MODERN POETRY IN HINDI

STUDY MATERIAL

VI SEMESTER

CORE COURSE : HIN6 B12

For

BA HINDI

(2014 ADMISSION ONWARDS)

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

Calicut University P.O, Malappuram, Kerala, India 673635

181A

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

STUDY MATERIAL

VI SEMESTER

BA HINDI

(2014 ADMISSION ONWARDS)

CORE COURSE IN HINDI

HIN6 B12 : MODERN POETRY IN HINDI

Prepared by:

Module 1 & lll & IV *:* *Dr Manikandan c c*
Asst .professor
Department of Hindi
EKNM Govt.College
Kasargod

Module ll *:* *Dr. Maya p*
Gust lecturer
Department of Hindi
University of Calicut

Layout: 'H' Section, SDE

©
Reserved

CONTENT **PAGE NO.**

Module - I	**:**	**5 – 18**
Module - II	**:**	**19 – 27**
Module - III	**:**	**28 – 34**
Module - IV	**:**	**35 -43**
MODEL QUESTIONS	**:**	**44-45**

MODULE - 1

द्विवेदी युग

भारतेन्दु युग यदि आधुनिक काल का प्रवेश द्वार है तो द्विवेदी युग उसका विस्तृत प्रांगण जहाँ उन प्रवृत्तियों को विकसित एवं पल्लवित होने का अवसर प्राप्त हुआ जो भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई थीं। विशेषतः भारतीय जनमानस में स्वदेशानुराग एवं नवजागरण के जो बीज भारतेन्दु युग में अंकुरित हुए थे, वे द्विवेदी युग में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आ गए।

उन्नीसवीं शती का अन्त होते-होते भारतेन्दुकालीन समस्या पूर्ति एवं नीरस तुकबन्दियों से सहृदय विमुख होने लगे तथा लम्बे समय से काव्य भाषा के रूप में व्यवहृत ब्रजभाषा का आकर्षण भी अब लुप्त होने लगा और उसका स्थान खड़ी बोली हिन्दी ने ले लिया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गरिमामण्डित व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक के रूप में हिन्दी जगत की महान सेवा की और हिन्दी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान किया। महावीरप्रसाद द्विवेदी सन् 1903 में सरस्वती पत्रिका के सम्पादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी, काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने 'कवि कर्तव्य'जैसे निबन्धों द्वारा कवियों को उनके कर्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छन्द योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विराम चिह्नों के प्रयोग द्वारा हिन्दी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया

हिन्दी नवजागरण और सरस्वती

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल वस्तुतः जागरण का सन्देशलेकर आया। सन् 1857 ई. में हुए प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने नवजागरण का विगुल बजा दिया और भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतन्त्रता, राष्ट्रोत्थान, स्वदेशाभिमान की भावनाएँ जाग्रत होने लगीं। भारतेन्दु युग में जहाँ इनका सूत्रपात हुआ, वहीं द्विवेदी युग में ये पल्लवित एवं विकसित हो गईं। डॉ. राम विलास शर्मा ने

इसीलिए हिन्दी नवजागरण को हिन्दू जाति का जागरण माना है। इस नवजागरण की लहर का जन-जन तक पहुँचाने में 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त प्रभा, मर्यादा पत्रिका को भी यह श्रेय जाता है।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 ई. से प्रारंभ हुआ तथा सन् 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका सम्पादन भार संभाला। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में सरस्वती पत्रिका से उद्धरण देकर इस बात को पुष्ट किया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा लेकर तथा उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़ने वाले अनेक कवि सामने आए जिनमें प्रमुख हैं- मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि। यही नहीं अपितु बहुत सारे ऐसे कवि जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे तथा उनकी विषय वस्तु एवं शैली प्राचीन पद्धति पर थी, अब द्विवेदी जी एवं 'सरस्वती' से प्रेरित होकर काव्य के चिर-परिचित उपादानों को छोड़कर नए विषयों पर खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथा राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'। इन सभी कवियों की कविताएँ नवजागरण, राष्ट्रीयता, स्वदेशानुराग एवं स्वदेशी भावना से परिपूर्ण है।

छायावाद

छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन कविता के उपरान्त हिन्दी में हुआ। मोटे तौर पर छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई.से 1936 ई. तक मानी जा सकती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी छायावाद का प्रारम्भ 1918 ई. से माना है, क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों पन्त, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी प्रारम्भ की थी। 1918 में प्रसाद का 'झरना' प्रकाशित हो चुका था तथा निराला की प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' 1916 ई. में प्रकाशित हुई थी। पन्त के 'पल्लव' की कुछ कविताएँ भी 1918 में प्रकाशित हुई बो चुकी थीं। प्रसाद की 'कामायनी' 1935 ई. में प्रकाशित हुई तथा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1936 ई. में हुई। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर छायावाद की अन्तिम सीमा 1936 ई. मानना समीचीन है।

छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान

एवं सूक्ष्म है। प्रारंभ में 'छायावाद' का प्रयोग व्यंग्य रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थीं, जिनकी 'छाया' (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किन्तु कालान्तर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।

छायावाद की प्रमुख परिभाषाएँ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -"छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबन्ध काव्य वस्तु से होता है, अर्थात् जहां कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। ... छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्याप्क अर्थ में है।"

जयशंकर प्रसाद -"जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएं है।"

डॉ. रामकुमार वर्मा - "परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।"

डॉ.नगेन्द्र - "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"

छायावाद के प्रमुख कवि

छायावादी कवि चतुष्ट्रय में प्रसाद, पन्त, निराला एवं महादेवी वर्मा की गणना होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुकुटघर पाण्डेय को छायावाद का जनक माना है।

मैथिलीशरण गुप्त

हिन्दी साहित्य के आख्याता, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में चिरगाँव (जिला झाँसी) में हुआ था। आपके पिता सेठ रामचरण सीता के उपासक थे। भगवदभक्ति, विशेषतः राम और सीता के प्रति भक्ति एवं कविता प्रेम की प्रेरणा श्री मैथिलीशरण गुप्त को अपने पिता से मानों उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। इस भक्ति-भाव और काव्य-प्रेम का निरन्तर विकास होता रहा जिसके फलस्वरूप मैथिलीशरण के मन में रामकथा के प्रति असीम श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो गया। इस असीम श्रद्धा ने ही उन्हें रामकथा क अमर गायक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

गुप्त जी आस्थावान व्यक्ति थे। अपने देश की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रथा परंम्पराओं में उनकी अविचल आस्था थी। गाँधीजी के मार्ग-दर्शन में अपने देश के स्वातन्त्रय एवं उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त थे। विश्वबन्धुत्व की भावना की उत्तरोत्तर सफलता के प्रति भी वे आशावादी थे। इसलिए उनकी साहित्य में सृजन है। संहार नहीं, स्नेह-सौहार्द एवं समन्वय सहयोग है, संघर्ष नहीं।

आस्था और आराधना में पित (सेठ रामचरण), साहित्य-साधना में कविता-गुरु (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी) और सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्शों के नेता बाबू (महात्मा गाँधी से प्रभावित होने के कारण गुप्त जी के काव्य में भक्ति, काव्य-साधना और देश-प्रेम आदि की विशेषताएँ मिलती हैं। गुप्त जी ने लगभग चालीस काव्य ग्रंथों की रचना की। उनका वर्ण्य-विषय चाहे पौराणिक हो (उदाहरणार्थ 'शकुन्तला,' 'पंचवटी' , 'साकेत', 'द्वापर', 'नहुष', 'जयभारत' आदि) चाहे ऐतिहासिक (उदाहरणार्थ 'रंग मे भंग', 'सिद्धराज', 'कुणाल गीत' आदि) अथवा सामयिक ('भारत-भारती', 'किसान', 'स्वदेशश संगीत' अजित आदि) उपयुक्त तीनों गुण उनकी काव्य रचनाओं में सदा विध्यमान रहे, और यही तीनों गुण उनके व्यक्तित्व के आधार-स्तम्भ बने।

आरंभ में गुप्त जी रसिकेश तथा रसिकेन्द्र नाम से ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें खड़ीबोली में कविताएँ लिखने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित किया। उन्होंने गुप्त जी की अनेक रचनाएँ सरस्वती में प्रकाशित की। गुप्त जी को अपने महाकाव्य साकेत की सृजन-प्रेरणा भी आचार्य द्विवेदी के एक लेख कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता से ही प्राप्त हुई।

समाज और राष्ट ने मैथिलीशरण गुप्त का समुचित सत्कार किया। हिन्दी जगत उन्हें भारत के राष्ट्रकवि माने गए। 1937 ई. में उन्हें साकेत महाकाव्य पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ और 1946 ई में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने गुप्त जी को साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया। 1948 ई. में आपको आगरा विश्वविधालय ने डी.लिट की उपाधि देकर सम्मानित किया। और 1952 ई. से लेकर देहावसान (1964) तक वह राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे।

अधययन की सुविधा के लिए श्री मैथिलीशरण की रचनाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। अनुदित और मौलिक रचनाएँ। मौलिक रचनाओं को चार भागों में उपविभाजित किया जा सकता हैः नाटक, मुक्तक काव्य, प्रबन्धात्मक मुक्तक और प्रबन्ध काव्य।

गुप्त जी की अनुदित रचनाओं के नाम हैं: 'विरहिणी ब्रजां गन्ना', 'मेघनाथ वध', 'प्लासी का युद्ध', 'स्वप्नवासवदत्ता' और 'उमर खय्याम की रूबाइयाँ'। इसमें से पहली दो रचनाएँ बंगल के सुप्रसिद्ध कवि माईकेल मधुसूदन दत्त की बंगल कृतियों का गलातियों का हिन्दी अनुवाद है। 'प्लासी का युद्ध' बाबू नवीनचन्द्र सेन की बंगल कृति पलाशेर युद्ध का 'स्वप्नवासवदत्ता भास' के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक का, उमर खयाम की रूबाइयाँ फारसी के प्रसिद्ध कवि उमर खय्याम की रूबाइयों का एडवर्ड फिटजरेल्ड द्वारा किये गये अंग्रजी रूपान्तर का हिन्दी काव्यानुवाद है। इन अनुवादों में गुप्त जी ने मूल ग्रन्थों के भावों को अत्यन्त कुशलतापूर्वक व्यक्त करके अपने अनुवाद-कौशल का परिचय दिया है।

गुप्त जी के तीन प्रकाशित नाटक हैं- 'तिलेत्तमा', 'चन्द्रहार' और 'अनय'। इनमें से प्रथम दो पौराणिक हैं और अनध एक नाट्यरूपक है जिसकी कथा कलिपत तथा समसामयिक है। मूलतः कवि और प्रधानतः प्रबन्धकार होने के कारण गुप्त जी को अपने नाटकों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुए है।

श्री मैथिलशरण गुप्त की मुक्तक कविताएँ गीतिकाव्य के विविध गुणों संगीतात्मकता और लयात्मकता आदि से अलंकृत हैं। इन कविताओं के संग्रह 'पध-प्रबन्ध', 'पत्रावली', 'स्वदेश -संस्कृत' 'गीतझकार' और 'मंगलघट' के नाम से प्रकाशित हुए। पध-प्रबन्ध में विभिन्न मनोभावों के साथ-साथ प्रकृति वर्णन सम्बन्धी अनेक कविताएँ भी संग्रहित हैं और कुछ छोटे-छोटे उपदेशात्मक आख्यान हैं। पत्रावली मे ऐतिहासिक आधार पर लिखे गए पधात्मक पत्रा हैं। स्वदेश-संगीत में संक कलिक कविताओं में कवि की सामयिक राजनीतिक तथा समकालीन आंदोलनों से प्रेरित-प्रभावित विचार तथा उदगार व्यक्त हुए है। 'गीतझकार' कवि की नवीन शैली तथा भावनाओं से परिपूर्ण कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह की अनेक कविताओं पर छायावाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

प्रबन्धात्मक-मुक्तक शीर्षक के अन्र्दगत गुप्त जी की उन कृतियों का समावेश किया जाता है, जिनमें कोई श्रृंखलाबद्ध इतिवृत्त या किसी चरित्रा का सांगोपांक निरूपण न होने पर भी विचारों की एकता तथा भावों की क्रमबद्धता हो देखने पर मुक्तक तुल्य जान पड़ने पर भी इनमें आंतरिक प्रबंधात्मक विधमान है। 'भारती-भारती', 'वैतालिक', 'हिन्दू', 'कुणाल-गीत', 'विश्ववेदना', 'अंजलि और अहर्य', 'राजा और प्रजा' गुप्त जी की ऐसी ही रचनाएँ है। 'भारत-भारती' अपने युग की सर्वाधिलोकप्रिय रचना रही है। वैतालिक उद्बोधन काव्य है जिनमें कवि अपने युग का वैतालिक बनकर युग से रेददेने के लिए उपस्थित हुआ है। 'कुणाल-गीत' सम्राट आशोक के पुत्र कुणाल की लोक प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। मुक्तक-शैली में रचित इन 95 गीतों में भावात्मक-अनिवति विधमान

है। विश्व-वेदना वस्तुतः विश्व की वेदना से व्यथित कवि की कराह है और अंजलि और अध्य में महात्मा गांधि निधन पर कवि के शोक सं तत्पदय से निकले उदगार सं कलि हैं। राजा और प्रजा के दो खं है, प्रथम खण्ड में प्रजातं प्रणाली के दोषों का वर्णन और द्वितीय में उक्त दोषों का निराकरण है। यह कृति लोकतं के प्रति कवि के विश्वास का काव्यात्मक प्रमाण है।

प्रबन्ध काव्यों में सर्वप्रथम रचित तथा प्रकाशित होने का श्रेय 'रंग में भंग' को प्राप्त है। ऐतिहासिक आख्यान के आधार पर इसमें राजपूताने की मान-मर्यादा का उल्लेख किया गया है। जयद्रथ-वध में महाभारत के उस आख्यान को काव्य-बद्ध किया गया है जिसमें अर्जुन पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह में प्रवेश कर असाधारण शौर्य का प्रदर्शन करता है, वह कौरवों के छल का शिकार होता है और अर्जुन उसके वधु का प्रतिशोध जयद्रथ का वधु करके लेते हैं। शकुन्तला में महाकवि कालिदास कृत नाटक को हिन्दी प्रबन्ध काव्य का रूप दिया गया है। किसान में भारतीय किसान की तत्कालीन स्थिति का मार्मिक दिग्दर्शन है, और पंचवटी रामकथा का शूर्पणखा- प्रसंग काव्यबद्ध किया गया है। गुप्त जी के प्रारंभिक रचनाओं में पंचवटी को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। शक्ति में कवि ने पौराणिक देव-दानव संग्रह और निरूपण इस के प्रतिपादन के लिए किया है कि संगठ में ही शक्ति रहती है।

'सैरंधी', 'वक-संहार' और 'विकट' में महाभारत के विविध आख्यानों का काव्य-रूपान्तर है। 'गुरुकुल' में गुरुनानक, अंगद, अमरदास, रामदास, हरगोविन्द्र, हरराय, हरिकृष्ण, तेगबहादुर तथा गोविन्द सिंह जी की जीवन गाथाएँ अंकित की गई है। 'साकेत' महाकाव्य में रामकथा के माध्यम से उर्मिला और लक्ष्मण के जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया गया है। 'यशोधरा' में गौतम बुद्ध और उसकी पत्नी यशोधरा की जीवन-झाँकी है, जिनमें नारी के स्वाभिमान तथा असहायता का अभूतपूर्व चित्रण है। 'द्वापर' में आत्मोदगार शैली में श्रीकृष्ण तथा उनसे संबन्धित कुछ भक्त-पात्रों के जीवन-चित्रा प्रस्तुत हैं। 'सिद्धराज' एक ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है जिसमें पाटन के शासक सिद्धराज जयसिंह, मालवेश्वर नरवर्मा तथा महोवे के राजा मदनवमी की जीवन घटनाएँ संकलित हैं। 'नहुष' में महाभारत के एक आख्यान के आधार पर मनुष्य की शक्ति व सीमाओं का निरूपण है। 'अर्जन और विसर्जन' में अर्जन के अंतर्गत पाप की कमाई की निन्दा है। विसर्जन में कवि ने कल्पना की है कि यदि भारत वैभवशाली न होता तो विदेशी आक्रमणकारी उसे कभी पददलित न करते। काबा और कर्बला द्वारा हमारे कवि ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को पुष्ट किया है और राष्ट्र के लिए वांछित उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया है। अर्जित नामक वर्णनात्मक काव्य में प्रायः आधुनिक युग के सिद्धान्तों एवं वास्तविक घटनाओं को स्थान दिया गया है। प्रदक्षिणा में संक्षेप में राम-कथा का वर्णन

है। विष्णु-प्रिया में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी की जीवन झाँकी अंकित है। जयभारत नामक विशाल प्रबन्ध-काव्य में नहुष की कथा से लेकर पाण्डवों के स्वर्गा रोहात्मक की घटनाओं का वर्णन है। समय-समय पर रचे गये अंशा का सं कल होने के कारण इस काव्य कृति में कथा-ऐक्य तथा प्रबन्ध-सूत्राता शिथिल एवं क्षीण है। 'जय भारत' का युद्ध नामक अंश उत्कृष्ट है। यह अलग से पुस्तकाकार में भी प्रकाशित हो चुका है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ केवल परिमाण के नाते ही नहीं, काव्य-सौष्ठव के नाते भी महत्त्वपूर्ण हैं। इन काव्यों में जीवन का वैविध्य समाया हुआ है और विस्तार भी। भक्ति भावना से परिपूर्ण होने पर भी इसमें संकीर्णता न होकर उदारता है। समन्वयवादी होने के कारण गुप्त जी की राष्ट्रीयता सर्वत्रा सहयोग और सहअस्तित्व का ही समर्थन करती है। अपनी कृतियों के माध्यम से गुप्तजी ने एक ओर अपने देशकाल को वाणी दी और दूसरी ओर मानव की युगयुगीन उमंगों का आकांक्षा तथा उच्छवासों को काव्यबद्ध किया। इसलिए मानवतावाद इन कविताओं का प्राण है। अतीत के प्रति अनुराग, वर्तमान के प्रति आत्मविश्वास और भविष्य के प्रति भरपूर आशावान होने के कारण गुप्त जी ने अपनी रचनाओं द्वारा जो सिद्धान्त निर्धारित किए हैं, तो मार्ग सुझाये हैं और जो आदर्श स्थापित किये हैं, वे देशकाल निरपेक्ष हैं।

गुप्त जी एक साहित्य-साधक थे। उन्होंने लिखा है कि केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए। अतः काव्य-सर्जन उनके लिए केवल मनोरंजन मात्रा न था। इसका एक उद्देश्य एक निश्चित लक्ष्य था। वह लक्ष्य था कला (साहित्य) के माध्यम से मानवता का उन्नयन, यह कार्यसाधना से ही सम्भव था। गुप्त जी ने इसके लिए पहले अपने जीवन की साधना की। उन्होंने अपने प्रिय आदर्शों को अपने जीवन में मूर्तिमं किया। फिर भाषा एवं काव्य की साधना द्वारा उन आदर्शों को और काव्य वाणी प्रदान की। इसीलिए उनकी गरिमामयी काव्य-कृतियों में इतनी सहजता है।

गुप्त जी का विशिष्ट गुण था। 'तीव्र स्वदेश-प्रेम'। भारत उन्हें सर्वाधिक प्यार था। उनका अखण्ड विश्वास था कि 'सर्वत्रा हमारे संग स्वदेश हमारा', इसीलिए वह अपने युग ओर देश की वाणी को इतने प्रभावशाली ढंग से काव्यबद्ध कर सके। उन्होंने अपने देश के अतीत की विरुदावलियाँ गायीं। वर्तमान का सही एवं यथार्थ मूल्यांकन किया और भविष्य के आलोक्य चित्रा उत्कीर्ण किये क्योंकि अपना देश उन्हें बहुत प्यारा था। वह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि इस स्वदेश-प्रेम ने उन्हें संकीर्ण कभी नहीं होने दिया। अन्यथा वे समाज और राजनीति के प्रश्नों पर सम्पूर्ण विश्व के परिप्रेक्ष्य में चिंतन-मनन न करते, युद्ध एवं शानित की समस्याओं एवं उनके सम्भावित समाधानों पर विश्वव्यापी

दृष्टि न डालते, 'विश्ववेदना' से विकल न होते। उनका स्वदेश-प्रेम उनके मानव-प्रेम से भिन्न न था। वस्तुतः मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि कवि हैं।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते :-

प्रस्तुत गीत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध रचना 'यशोधरा' से गृहीत है। इस काव्य की रचना मूलतः उपेक्षित यशोधरा के महत्त्व की प्रतिष्ठा के लिए की गई है। वस्तुतः 'यशोधरा काव्य की कथा विरहिणी की कथा है। इस गीत में सिद्धार्थ-पत्नी यशोधरा की विरह-वेदना का ही वर्णन है।

एक दिन कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ को व्याधि, वृद्धावस्था और मृत्यु की अनिवार्यता का बोध होता है, तो वे इस क्षणभंग संसारको त्यागकर जीवन-सत्य की खोज में निकल पड़ने का निश्चय कर लेते हैं। फलस्वरूप अपनी नव-विवाहिता पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को सुसुप्तावस्था में ही छोड़कर अर्धरात्रि के समय कपिलवस्तु को त्याग वन में चले जाते हैं। जागने पर जब यशोधरा को उनके वन-गमन का समाचार मिलता है तो दुखी हो जाती है। उनके आत्म-गौरव को गहरी ठेस पहुँचती है। वह अपनी सखि से कहती है कि उसके स्वामी सिद्धि लाभ के लिए गये हैं, यह बड़े गौरव की बात है, किन्तु वे चोरी-चोरी गये इस बात का दुःख है। यदि वे मोक्ष-प्राप्ति के निमित्त उससे कहकर जाते तो वह उन्हें सहर्ष जाने देती। किसी प्रकार भी उनके मार्ग में बाधा बनकर न आती। प्रस्तुत गीत में यशोधा का नारी-गौरव दीप्त हो उठता है और वह कह उठती है कि उस जैसी सित्रायाँ ही अपने प्रियतमों को सजिजत करके युद्ध करने के लिए भेज देती है। यशोधरा अनुमान लगाती है कि सम्भवतः सिद्धार्थ इसलिए बिना बताए चले गये, क्योंकि उन्हें शायद इस बात का डर था कि यशोधरा के आंसू कहीं उनके सिद्धि-मार्ग की बाधा न बन जाऐं? लेकिन ऐसी बात नहीं थी। उन्होंने शायद उन्हें पहचानने में बहुत बड़ी भूल की। अन्ततः उसकी यही कामना है कि सिद्धार्थ को उसके लक्ष्य-प्रापित में सफलता मिले और लक्ष्य (जीवन-सत्य) को प्राप्त कर शीघ्र ही पुनः कपिल-वस्तु लौट आएं।

गुप्त जी ने इस गीत में सिद्धार्थ-पत्नी यशोधरा का एक आदर्श गरिमामयी भारतीय नारी के रूप में चित्रण किया तथा नारी को पुरुष का पूरक बताया। इस गीत की भाषा सरल, सहज और प्रवाहमयी है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

"सखि, वे मुझसे कहकर जाते

कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते?

मुझको बहुत उन्होंने माना

फिर भी क्या पूरा पहचाना

मैने मुख्य उसी को जाना

जो वे मन में लाते

सखि वे मुझसे कहकर जाते"

प्रस्तुत पक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त रचित 'यशोधरा' से उद्धत हैं। कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ अपनी नव-विवाहिता पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को जब सोता हुआ छोड़कर वन में चले जाते हैं तब यशोधरा का मन दुःख से भर उठता है। उसे दुःख इस बात का है कि उससे बिना पूछे ही चले गये हैं। सिद्धार्थ को यदि सिद्धि-मार्ग के लिए जाना था तो वह कभी उनकी राह का रोड़ा न बनती। प्रस्तुत यशोधरा अपनी इन्हीं व्यक्तिगत भावनाओं को एक सखी के सामने व्यक्त करते हुए कह रहीं हैं।

व्याख्या- हे सखि, मेरे स्वामी सिद्धि-प्रापित के लिए गये हैं, यह मेरे गौरव की बात है, किन्तु उन्होंने मुझसे छिपाकर और बिना कुछ कहे जो गृह-त्याग किया है, वह मुझे अत्यन्त पीड़ादायक लग रहा है, यदि वे मुझे कहकर जाते तो मैं उनके शुभ कार्य के मार्ग में कभी भी बाधक बनकर न आती, अपितु सहर्ष उन्हें बन जाने देती।

यशोधरा अपने गृहस्थ जीवन की स्मृतियों को स्मरण कर कह रही है कि मेरे प्रियतम ने आज तक मुझे बहुत अदिक आदर और मान दिया है, किन्तु फिर भी क्या वे मुझे पूर्ण रूप से पहचान सके हैं? यदि वे मुझे भली-भां प्रिहचान जाते तो कभी चोरी-चोरी वन नहीं जाते। मैंने तो सदा वही किया जो उन्हें रुचिकर प्रतीत होता था। उनकी जो भी इच्छा होती थी, अपनी सभी इच्छाओं को भुलाकर मैं उसी को प्रमुखता देती थी। हे सखि! उन्हें मुझे पूछकर जाना चाहिए था।

विशेष-प्रस्तुत पंक्ति में यशोधरा ने भारतीय नारी के गौरवपूर्ण उज्जवल जीवन की एक मधुर झलक प्रस्तुत की है।

"*स्वयं सुसज्जित करके क्षणों में*

प्रियतम को प्राणों के पण में

हमीं भेज देती है रठा में

क्षात्र धर्म के नाते।

सखि वे मुझसे कहकर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा

किसपर विफल गर्व अब जमा

जिसने अपनाया था त्यागा,

रहे स्मरण ही आते"

व्याख्या-नारी-गौरव की प्रतिष्ठ करती हुई यशोधरा अपनी सखी से कह रही है कि ह जैसी नारियां ही हैं जो अपने प्रियतम को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करके प्राणों की बाजी लगाकर, क्षत्रिय-धर्म को दृष्टिपथ में रखती हुई युद्ध-भूमि में भेज देती हैं। अतः इस सिद्धि के हेतु वन जाते समय मैं अपने पति को कैसे रोक सकती थी। किन्तु मुझे

अपने पति को हर्षपूर्वक विदा करने का सौभाग्य भी प्राप्त न हो सका, अब मैं किस बात पर मिथ्या गर्व करूँ क्योंकि मैं अपने जिस भाग्य पर इठलाती हुई रहती थी, (क्योंकि सिद्धार्थ यशोधरा से बहुत प्रेम करते थे, अतः यशोधरा को अपने लिए सौभाग्यवती मानना उचित ही था) वह अभागा भाग्य भी मेरा न हो सका। जिस पति ने मुझे बड़े प्रेम के साथ अपनाया था उसी ने अब मुझे त्याग दिया है। वे भले ही उसे भूल जाएं, लेकिन मैं तो हमेशा उनको याद करती रहूँगी। आज मेरे नेत्रा उन्हें क्रूर समझ रहे हैं, क्योंकि वे मुझसे बिना कहे चले गये। किन्तु मान लो कि वे मुझसे पूछकर भी जाते तो क्या इन नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित न होती, अवश्य होती और इस अश्रुधारा को ये दयालु दय भला किस प्रकार सह सकते थे। इसीलिए उन्होंने चोरी-चोरी गृह-त्याग करना ही उपयुक्त समझा।

विशेष- 'स्वयं सुसज्जित.....नाते में आर्य ललनाओं का महान आदर्श मुखर हो उठा है। यशोधरा क्षत्राणी है। उसके क्षत्रियोचित व्यक्तित्व को उभारने के लिए सिद्धार्थ ने उचित अवसर नहीं दिया, उस पर संहदकिया। इस बात की ग्लानि, क्षोभ और टीस यशोधरा को है। यही उसने उक्त उपालम्भ में कहा है।

व्याख्या- हे सखी! अब जबकि वे यहाँ से चले गये हैं, मेरी हार्दिक कामना है कि वे सुखपूर्वक सिद्धि लाभ करें और कभी मेरा ध्यान करके दुःखी न हों। मैं उन्हें किसी भी प्रकार उलाहना नहीं देना चाहती। इस वियोग-दशा में वे मुझसे अधिक अच्छे लग रहे हैं, क्योंकि वे एक महान उश्येकर यहाँ से गयैं। यदि वे यहाँ से गये हैं तो इतना भी निश्चित है कि वे एक दिन यहाँ लौटकर भी अवश्य आएंगे और अपने साथ कोई अपूर्व वस्तु भी लाएंगे। किन्तु प्रश्न तो यह है कि मेरे प्राण उनका किस प्रकार स्वागत करेंगे। वे उनका स्वागत हँसते-हँसते करेंगे अथवा रोते-रोते। विरहिणी यशोधरा के लिए सिद्धार्थ का स्वागत हँसते-हँसते करना तो कठिन है, वे उससे बिना पूछे जो चले गए हैं।

भारतीय नारी स्वयं अनेक कष्टों को सहकर भी यह कभी नहीं चाहती कि उसका पति किसी प्रकार से भी दुःखी हो।प्रस्तुत पंक्तियों विप्रलम्भ श्रृंगार की स्रोतसिवनी प्रवाहित हो रही है और उसमें मर्मस्पर्शिता भी विधमान है। इस गीत की भाषा सहज और सरल है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

हिन्दी के छायावादी कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का महत्वपूर्ण स्थान है। निराला छायावाद की ऊर्जा एवं ऊष्मा हैं। उन्होंने सबसे पहले जीवन की कटु वास्तविकता का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। उनकी कविताओं में कल्पना की ऊँची उडान है, साथ ही साथ जीवन के खुरदुरे सत्य का उद्घाटन भी है। उन्होंने हिंदी कविता को नवीन भाव, नवीन भाषा और नवीन मुक्त छंद प्रदान किये हैं। उनके काव्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने ज़माने की ज़िन्दगी की सच्चाई को स्वर दिया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- परिमल, गतिका, अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अर्णिमा, बैला, नये पत्ते, राम की शक्तिपूजा, सरोजस्मृति आदि। 'वह तोडती पत्थर' निराला की एक बहुचर्चित कविता है। 1936 में लिखित इस कविता में मज़दूर वर्ग के प्रति निराला जी की तीव्र सहानुभूति प्रकट है। यह कविता प्रगतिवादी साहित्य का मूर्तरूप है।

वह तोड़ती पत्थर

कवि ने इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई एक औरत को देखा। वह जहाँ बैठी है, वहाँ कोई छायादार पेड नहीं था। फिर भी उसे वही बैठना स्वीकार था। अर्थात छायादार पेड रूपी आश्रय उसके ज़िन्दगी में भी नहीं है, फिर भी वह ये सब स्वीकार कर जीती है और कठिन मेहनत करके अपनी जीविका चलाती है। उसकी प्रकृति भर बँधे यौवन की है, शारीर काला है, हाथों में बड़ा हथौड़ा था, उसकी दृष्टि झुकी हुई बित कर्म में रत मन से पत्थरों पर प्रहार कर रही थी। उसके पास बडी मालिका या अट्टालिका या प्राकर भी है। कवि ने इन बिंबों के द्वारा श्रमजीवि और पूँजीपति की अवस्था का व्यतिरेक बताया है। पाठक को ऐसा लगेगा कि तोड़ती पत्थर का जो प्रहार, वह सामाजिक विषमताओं का प्रहार है।

गर्मियों के दिन में धूप चढ रही थी, सूर्य प्रबल था और धरती से लू चढ़ रही थी। ऐसा लगता था कि धरती पर रूई जलने रही है। हवा में जो धूलियाँ उठती थी वे चिनगारी जैसी उस औरत को जली रही थीं। सुबह से लेकर प्रायः दुपहर तक बिना रुककर वह पत्थर तोड़ती रहती है।

लेखक को उसपर ध्यान देते हुए उस औरत ने एक बार देखा। फिर वह दृष्टि सामने के महल पर पड़ी, और मालूम हुआ कि वहाँ तीसरा कोई नहीं, तो नज़र एक बार फिर लेखक पर डाली।

लेखक ने उस नज़र को पहचाना कि वह मार खाकर भी रोनेवाली नहीं है। सहज श्रृंगार में सनी उसकी जीवन रूप वीणा की झंकार कवि ने सुनी। मतलब, कवि ने उसके सारे विचारों, वेदनाओं एवं यातनाओं को समझ लिया। एक क्षण के बाद वह काँप उठी और परपुरुष के दर्शन से मना ही करते हुए आँखें वापस ले लीं । उसके माथे से पसीने की बूँदे दुलककर नीचे गिरीं। वह फिर अपने प्रियकर्म में लीन हो गयी। कवि को ऐसा लगा कि वह मौन रूप से मानो यह कहती है- 'मैं तोडती पत्थर'!

प्रस्तुत कविता समाज के सर्वहारा वर्ग का सच्चा चित्रण प्रस्तुत करती है। अपनी समस्त व्यथाओं, पीड़ाओं, विवशताओं और यातनाओं को चुपचाप सहती हुई कठिन मेहनत करनेवाली औरत समाज के पिछड़े वर्ग का सच्चा प्रतीक है। समाज के उच्चवर्ग और निम्नवर्ग का यह भेदभाव कवि का आत्मरोष जगाता है। पत्थर तोड़ती औरत का बिंब एवं आनन्द भवन और उसमें सुख भोगनेवाले संपन्न वर्ग का चित्र पाठक के दिल को भी छू लेता है। श्रम के महत्व और श्रमिक स्त्री के आत्म गौरव का उदात्त चित्रण करनेवाली इस कविता के माध्यम् से निरालाजी ने सामाजिक जीवन के क्रांतिकारी तत्वों के संयोजन से होनेवाली उथल-पुथल का चित्र प्रस्तुत करके कविता और सामाजिक यथार्थ को भी नया आयाम दिया है।

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत उत्तर प्रदेश के 'कौसानी' से है। 'कौसानी' अलमोडा जिले का बहुत सुन्दर स्थान है। उनका बचपन माँ के अभाव मैं बीता। आज़ादी की लड़ाई में वे भी शामिल हुए थे। वे छायावादी कवियों के चार स्तंभों में एक है। अन्य तीन कवि ये हैं- निराला, महादेवी वर्मा और जयशंकर प्रसाद।

वे सुकुमार कवि थे। इनकी कविताओं में अधिकांश छायावादी प्रवृत्तियाँ देखी जा सकता हैं। चित्रात्मक भाषा इनकी कविता की विशेषता है। स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह इनकी कविताओं में पाया जाता है। प्रकृति सौन्दर्य के धनी है इनकी छायावादी थे, फिर प्रगतिवादि (Progressive) बने, बाद में आध्यात्मवादी रहे। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं- वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, लोकायतन, चितंबरा आदि।

मौन- निमंत्रण ;-

मौन-निमंत्रण जागरण की कविता है। अज्ञात निमंत्रण कविता का कथ्य है। सबसे बड़ा निमंत्रण प्रकृति की ओर से होता है। जो इस निमंत्रण को पहचानता है उसका जीवन त्योहार की तरह बन जाता

है। कवि मौन निमंत्रण के द्वारा मनुष्य के साथ प्रकृति के सूक्ष्म सम्बन्धों को पकड़ते हैं। वे अपनी असीम कल्पना के द्वारा इस संबन्ध को पंक्तिबद्ध करते हैं।

कवि कहते हैं कि जब संसार स्तब्ध ज्योत्सना में निष्कलंक बच्चे के समान चकित होकर रहता है और विश्व के सुन्दर पलकों पर स्वप्न-अजान (unknown dream) विरचते हैं तब पता नहीं नक्षत्रों से कोआ मुझे मौन होकर बुलाता है।

नीला आकाश घने मेघों से भरा है। अंधकार में मेघ गरजता है।

सघन मेघों का भीमाकाश

गरजता है जब तमसाकार।

हवा लम्बे लम्बे निश्वास भरती है। धरती पर पानी प्रखर बरसता है। इस समय बिजली की चमक में कोई इंगित कर मुझे मौन निमंत्रण देता है।

धरती यौवन से भरी हुई है। इसे देखकर वसंतकाल खुशी से भर गया। कलियाँ दीर्घनिश्वास के साथ खिल उठीं जैसे विधुर आदमी अपनी प्रियतमा की याद में निश्वास करता है।

"विधुर उर के से मृदु उद्‌गार

कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास

इस समय सौरभ के बहाने मुझे करोई मौन संदेश भेजता है।"

समुद्र जब क्षुब्ध हो जाता है तब समुद्र में फेन पैदा होते हैं। समुद्र, फेन का व्याकुल संसार बन जाता है और पानी के बुदबुदे कहीं अनजाने ही बिखर जाते हैं। अब समुद्र के लहर से उठकर कोईआ अज्ञात मौन-बुलावा मुझे दे रहा है।

"उठा तब लहरों से कट कौन

न जाने मुझे बुलाता मौन"

स्वर्ण, सुखद, रंग में और सौरभ में विश्व को जब प्रभात डुबा देता है और चिड़ियों के समूह का कूजन धरती और आकाश को मिला देता है तब मेरे आलस पलकों को कोई आकर खोल देता है मौन।

न जाने अलस-पलकदल कौन

खोल देता मेरे मौन

घने अंधकार के साथ मिलकर जब संसार ऊँघता है और भयभीत झींगुर की आवाज़ वीणा की तंद्रा के समान कंपायमान है।

भीरु-झींगुर कुल की झनकार

कँपा देती तंद्रा के तार

अब न जाने खद्योता के बहाने कौन मुझे मौन होकर पथ दिखाता है।

स्वर्ण की शोभा में प्रभात आ जाता है। इस समय सारे संसार में प्रकाश फैल जाता है। सारी कलियाँ भ्रमरों के गुंजन सुनकर खिल जाती है।

सुरभी पीड़ित मधुपों के बाल

तड़पे, बन जाते हैं गुंजार

इस ठुलकते ओस में कोई अज्ञात मेरी आँखों को मौनतः आकर्षित करता है।

चारों ओर कर्म का अति-भार भरा पड़ा है। याने व्यस्त दिन का सुवर्ण अंत हो रहा है। कठिन मेहनत करनेवाले, शून्य शय्या पर आश्रय ले रहे हैं। इन सबसे मेरा प्राण आकुल बन जाता है। इस समय स्वप्न में आकार कोई मुझे सुन्दर धरती पर मौन होकार फिराता है।

न जाने, मुझे स्वप्न में कौन

फिराता, छापा जग में मौन

इस प्रकार अनेकों बहानों से मुझे निमंत्रण देनेवाला अरे प्रकाशमान शक्ति तुम कौन हो? मुझे अबोध और अज्ञान जानवर अज्ञात पथों को सुझाते हो और मेरे जीवन रूपी मुरली के छिद्रों में गान फूँक देते हो। ऐसा करनेवाले तुम कौन हो? मेरे सुख और दुःख में साथ देने वाले अरे! तुम कौन हो? क्या यह नहीं कह सकती है?

अहे सुख-दुख के सहचर मौन!

नहीं कह सकती तुम हो कौन!

इस कविता में कवि उस अज्ञात शक्ति की तलाश करते हैं जो निमंत्रण देती रहती है। कवि काफ़ी उत्साहित है, यह जानने के लिए कि वह कौन है जो उन्हें सदा निमंत्रण देता है। वास्तव में वह अज्ञात शक्ति उन्हें जीवन की ओर निमंत्रण दे रही है। निमंत्रण अक्सर जीवन को अक्सर जीवन को उत्साही बना देता है। प्रकृति, और कुछ नहीं है बल्कि मनुष्य के लिए एक बड़ा निमंत्रण है। इसे कवि जानता है और उस निमंत्रण के प्रति कुतूहल रहते हैं, साथ ही साथ जीवन को सकारात्मक दिशा की ओर बढ़ाते हैं।

सुकुमार भाषा इस कविता के शिल्प की विशेषता है। विचित्र बिम्बों में विषय वस्तु साकार होकर आती है। आत्मा और परमात्मा के संबंध को काव्य शिल्प ने स्पष्ट किया है।

Module II

हिन्दी प्रगतिवादी कविता

प्रगति शब्द का अर्थ आगे बढ़ना है, किन्तु हिन्दी में प्रगतिवादी शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं होता। जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद या मार्क्सवाद कहलाती है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप लिखी गई कविता प्रगतिवादी कविता है।

साम्यवादी विचारधारा के आधार पर समाज को दो वर्गों में बांटा जा सकता हैः

(1) शोषक वर्ग, (2) शोषित वर्ग।

1. शोषक वर्ग - शोषक वर्ग के अन्तर्गत वे पूंजीपति, मिलमालिक, उद्योगपति और जमींदार आते हैं, जो गरीबों और मज़दूरों का शोषण करते हैं।

2. शोषित वर्ग - शोषित वर्ग के अन्तर्गत गरीब, मज़दूर, किसान और श्रमिक आते हैं, जिसका शोषण किया जाता है।

साम्यवादी विचारक समाज में समता स्थापित करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि शोषण की प्रक्रिया बन्द हो। इसलिए प्रगतिवादी कविता भी शोषण का विरोध करती है।

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद

हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद का प्रारम्भ सन् 1936 ई. में हुआ। 1936 ई. से 1943 ई. की कविता प्रगतिवादी कविता है। हिन्दी साहित्य के वे कवि जिन्होंने साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर काव्य रचना की, प्रगतिवादी कवि कहलाए। इनमें प्रमुख हैं केदारनाथ अग्रवाल, नागर्जुन, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ. रांगेय राघव और त्रिलोचन शास्त्री।

इनके अतिरिक्त सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, रामधारी सिंह 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा आदि की रचनाओं में भी प्रगतिवादी तत्व उपलब्ध होते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर

रामधारी सिंह दिनकर (23 सितंबर 1908-24 अप्रैल 1974) का जन्म सिमरिया, मुंगेर, बिहार में हुआ था। उन्होंने इतिहास, दर्शनशास्त्र और राजनीति विज्ञान की पढ़ाई पटना विश्वविद्यालय से की। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेज़ी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। वह एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। उनकी अधिकतर रचनाएँ वीर रस से ओतप्रोत है। उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। उनकी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा उर्वशी के लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी काव्य रचनायें : प्रण-भंग, रेणुका, हुंकार, रसवंती, द्वन्द्व गीत, कुरुक्षेत्र, छूपछाँह, सामधेनी, बापू, इतिहास के आँसू, थूप और धुआँ,

मिर्च का मड़ा, रश्मिरथी, दिल्ली, नीम के पत्ते, सूरज का ब्याह, नील कुसुम, नये सुभाषित, चक्रवाल, कविश्री, सीपी और शंख, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, करोयला और कवित्व, मुत्तितिलक, आत्मा की आँखें, हारे को हरिनाम, भागवान के डाकिए।

कलम और तलवार :-

'कलम और तलवार' उनकी श्रेष्ट कविताओं में एक हैं। कलम और तलवार में से एक को चुनने की दुविधा को दिनकर चंद पंक्तियों में बड़ी सहजता से दूर करते हुए तलवार के ऊपर कलम की सर्वोच्चता को स्थापित करते हैं।

माना कि तलवार से हत्या हो सकती है मगर जगम भर भी सकते हैं। यह तो सिर्फ शरीर पर वरा करती है। मगर कलम की मार तो सीधे मस्तिष्क से होते हुए दिल पर चोट करती है। तलवार शब्दों पर हुकूमत नहीं कर पाती मगर कलम तलवारों को अपने नियंत्रण में रखना जानती है। कलम बंध कमरे में भी बैठे रचते है उँचे मीठे गान। वह देश की भाव जगाने वाली शक्ति है, दिल ही नहीं दिमागों में भी आग जगाने वाली शक्ति है। कलम विचारों की अंगारे पैदा करते है। अक्षर बन जाते चिंगारी। बौद्धिक स्तर पर जिस आदर्श समाज की हम कल्पना करते है, वहाँ विचारों की टकराहट से वातावरण अशांत होता है। यह वास्तव में सच है कि एक कलम से किया गया छोटा सा शान्तिपूर्ण कार्य तलवार से की गई हिंसा के मुकाबले बड़ा प्रभाव डालव सकता है। बड़े-बड़े नेता, शासक, धनवर्ग इत्यादि सबी कलमधारी से डरते है। तलवार का डर कुछ समय तक प्रभावित करता है। परन्तु कलम का डर लंबे समय तक प्रभावी रहता है।

राष्ट्रीय चेतना के विकास में दिनकर का योगदान स्तुत्य है, उनकी वाणी में शक्ति है, ओज है।

त्रिलोचन

त्रिलोचन शास्त्री का जन्म 20 अगस्त 1917, सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। त्रिलोचन हिंदी की आधुनिक प्रगतिशील कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। आपने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एम.ए व लाहौर से संस्कृत में शास्त्री की थी।आपने हिन्दी साहित्य को दर्जनों पुस्तकें देकर समृद्ध किया।आप पत्रकारिता के क्षेत्र में भी वे सक्रिय रहे और आपने 'प्रभाकर', 'वानर', 'हंस', 'आज', 'समाज' जैसी पत-पत्रिकाओं का संपादन भी किया।9 दिसम्बर 2007 को ग़ाजियाबाद में आपाक निधन हो गया।

कविता संग्रहः- धरती, दिगंत, गुलाब और बुलबुल, ताप के ताये हुए दिन, अरधान, उस जनपद का कवि हूँ, फूल नाम है एक, अनकहनी भी कहनी है, तुम्हें सौंपता हूँ, सबका अपना आकाश, अमोला। कहानी संग्रह : देश-काल। डायरी : दैनंदिनी। संपादन : मुक्तिबोध की कविताएँ, मानक अंग्रेजी-हिंदी कोश (सह संपादन)

नदी : कामधेनु

'नदी : कामधेनु' मनुष्य के प्रकृति के साथ लम्बे संघर्ष की ही कविता हैं। बहुत कम शब्दों में त्रिलोचन ने नदी और मनुष्य के बदलते सम्बन्धों के जरिये इसे बाँधा है। त्रिलोचन की काव्य-कला का यह सबसे सार्थक उदाहरण है। तीन छोटे-छोटे अंश पूरी विवरणात्मक शैली में हैं और उसके बाद एक अन्तराल है और उसके बाद एक सूक्त, वाक्य- 'अब वह कामधेनु है'। 'नदी को कामधेनु' में परिवर्तित कर देना मनुष्य के लम्बे संघर्षों की उपलब्धि है। इस शब्द के जरिये वह अपनी सारस्वत कविता के साथ भी एक पुल बनाते हैं और तुलसी एवं कबीर की कविता का उनकी कविता से एक सजातीय सम्बन्ध भी कायम होता है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए

"टनदी ने कहा था मुझे बाँधों
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदीं करो
मनुष्य दुहा रहा है
अब वह कामधेनु है।"

यह पंक्तियाँ त्रिलोचन की कविता 'नदीः कामधेनु' से लिया गया है। यह कविता मनुष्य के प्रकृति के साथ लम्बें संघर्ष की ही कविता है। त्रिलोचन ने नदी और मनुष्य के बदलते संबंधों के ज़रिये इसे बाँधा है।

व्याख्या

समकालीन यथार्थ के संबंध में एक विशेष महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय यथार्थ नदियों के दोहन का यथार्थ है। कई सभ्यताओं का विकास नदियों के ही तट पर हुआ, आज भी सभ्यताओं का विकास हो रहा है। नदियों की बली पर पुल बनाये जा रहे हैं, कारखानों से निकलने वाले विषाक्त पदार्थ नदियों के जल को दूषित कर रहे हैं। नदियों के दूषित और अतिश्य दोहन के संबंध में त्रिलोचन कविता में उकेरते हुए कहते है कि नदी का कामधेनु के रूप में शोषण कर मनुष्य उसे दुह रहा है। नदी को कामधेनु में परिवर्तित कर देना मनुष्य के लम्बे संघर्षो की उपलब्धि है।

त्रिलोचन की काव्य कला का यह सबसे सार्थक उदाहरण है। तीन छोटे अंश पूरी विवरणात्मक शैली में है और उसके बाद एक अन्तराल है और उसके बाद एक सूक्त वाक्य- 'अब वह कामधेनु है'।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' (7 मार्च, 1911-4 अप्रैल, 1987) कवि, कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और सफल अध्यापक थे। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कुशीनगर में हुआ। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पिता की देख रेख में घर पर ही संस्क-त, फारसी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा व साहित्य के अध्ययन के साथ हुई। बी.एस.सी. करके अंग्रेजी में एम.ए.करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़ गये। 1930 से 1936 तक विभिन्न जेलों में कटे। आप पत्र, पत्रिकायों से भी जुड़े रहे। 1964 में आँगन के पार द्वार पर उन्हें साहित्य अकादमी का और 1978 में कितनी नावों में कितनी बार पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। आप की प्रमुख कृतियाँ हैं; कविता संग्रहः भग्नदूत 1933, चिन्ता 1942, इत्यलम् 1946, हरी घास पर क्षण भर 1949, बाबरा अहेरी 1954, इन्द्रधनु रौंदे हुये ये 1957, अरी ओ करुणा प्रभामय 1959, आँगन के पार द्वार 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981), ऐसा कोई घर आपने देखा है (1986), प्रिज़न डेज़ एणड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में, 1946)। कहानियाँः विपथगा (1937), परम्परा (1944), कोठरीकी बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951); चुनी हुई रचनाओं के संग्रहः पूर्वा (1965), सुनहरे शैवाल (1965), अज्ञेय काव्य स्तबक (1995), सन्नाटे का छन्ज, मरुथल, संपादित संग्रहः तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक, पुष्करिणी (1953)। आपने उपन्यास, यात्रा वृतान्त, निबंध संग्रह, आलोचना, संस्मरण, डायरियां, विचार गद्यः और नाटक भी लिखे।

यह दीप अकेला है

'यह दीप अकेला' अज्ञेय की 'बावरी अहेरी' नामक काव्य संग्रह से ली गई है। इसका रचनाकार 18 अक्तूबर, 1952 में प्रकाशित हुआ है। यह कविता व्यक्ति और समाज के संबंध की ही कविता है। इसमें कवि ने बहुत ही ओजस्वी शब्दों में विभिन्न उपमानों और सीधे कथनों के द्वारा व्यक्ति का महत्व प्रतिपादित करते हुए भी उसे समाज केलिए समप्रित किए जाने की बात कही है। स्पष्टतः इसमें दिप व्यक्ति केलिए प्रयुक्त उपमान या प्रतीक है और पक्ति समाज केलिए। बाकी उपमानों को भ इसी तरह समझना चाहिए।

इस कविता में भी सामूहिक चेतना से टकरानेवाले, पृछक् सत्ता का दावा करने वाले अहंवाद की प्रतिष्ठा की गई है। पंक्ति में मिलने से पूर्व, जब वह अकेला था तब, एकाकीपन में, वह गर्व भरा-मतदाता था। पंक्ति बद्ध हो जाने के बाद उसका अलग व्यक्तित्व समाप्त हो जायेगा। इसी प्रकार कोई व्यक्ति विशेष है, जो विचारक, चिंतक, लेखक, नेता या समाजसेवक है, अपनी विशिष्ट प्रतिभा के

अनुसार काम कर रहा हैं। उसका व्यक्तित्व विकसित और दीप्त है। उसे किसी सर्वग्रासी व्यवस्था के यत्र में पिसने दिया जाय, तो उसकी अपने गरीमा तो नष्ट ही हो जायेगी; कहा नहीं जा सकता कि उसकी सामाजिक उपयोगिता कितनी होगी।

जो गीत यह कवि गा रहा है, उसे दूसरा कौन गयेगा? पानी में डुबकी लगाकर जलगर्भ से मोती आदि मूल्यवान वस्तुएँ लानेवाला। यह विशिष्ट व्यक्तित्व है, ऐसा दूसरा नहीं। स्वयं समाज केलिए अपने आपका अर्पण कर रहा हूँ। कालरूपी मधुमक्खी अमृत के समान पवित्र दूध, यह व्यक्ति वैशिष्टय की प्रशंसा है। युगों की साधना के परणामस्वरूप यह व्यक्तित्व की प्राप्त होता है। स्वप्रयत्न से सिद्ध, परापेक्षा या अधिनता से रहित ऐसा आत्मप्रत्यय, जो अपनी लघुता को जानकर भी भयभीत नहीं होता। इन पंक्तियों में कवि ने विशिष्ट व्यक्तित्व का गुणगान किया है। किन्तु समाज के हित केलिए, पंक्तिबद्ध हो जाने की स्वीकृति भी व्यक्त की है। अज्ञेय मानव समाज का आधार व्यक्ति-इकाई को मानते है। व्यक्ति की अद्वितीय गरिमा स्वाधीनता सृजनशीलता का लोप करके उसे समाज केलिए उपयोगी नहीं बनाया जा सकता-इस कविता का केन्द्रीय आशय यही है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए

"यह दीप अकेला.....पंक्ति दे दो।"

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'यह दीप अकेला' कविता से लिया गया है। इस कविता का कवि सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। इस कविता में दीप के माध्यम से कवि व्यक्तिगत सत्ता को सामाजिक सत्ता से जोड़ने की बात कर रहा है। मनुष्य में अतुलनीय सहनशीलता और संघर्ष की क्षमता है। समाज में उसके विलय से समाज और राष्ट्र मजबूत होगा।

दीप अकेला होने के बावजूद प्रेम से भरा व गर्व से परिपूर्ण होने के कारण अपनो से अलग है। वह मदमाता है क्योंकि वह सर्वगुण सम्पन्न है यदि उसे पंक्ति में सम्मिलित कर लिया जाए तो उस दीप की शक्ति, महत्ता तथा सार्थकता बढ़ जाएगी। दीप व्यक्ति का प्रतीक है, कवि पंक्ति में लाकर मुख्यधारा से जोड़ना चाह रहा है। तीप केलिए पनडुब्बा, समिध, मधु, गोरस, अंकुर, स्वयंभू, ब्रह्म, अयुत विश्वास तथा अमृत-पूतपय आदि उपमानों का प्रयोग किया गया है। ये सभी उपमान एक स्नेह भरे दीप केलिए पुर्णतया उपयुक्त है। पनडुब्बा के रूप में वह सच्चे मोतियों का लाने वाला है अर्थात् खतरों से खेलने वाला है, तो समिध; यज्ञ की लकड़ीद्ध बनकर संघर्षशील ता दृढ़निश्चयी दुग्ध् के समान सुख देनेवाला स्नेहशील, परोपकारी है। वह अंकुर की तरह स्वयं पैदा होकर विशाल सूर्य की निडरता से ताकता है, वह उत्साही है यह स्वयं ब्रह्मा का रूप में अर्थात् दीप; मनुष्यद्ध स्वयं तक ही सीमित नहीं है। उसे सांसारिक गतिविधियों में शामिल करके सर्वजन हिताय प्रयोग में लाया जाए तो सम्पूर्ण मानवता लाभान्वित हो सकेगी। 'यह अद्वितीय यह मेरा, यह मैं स्वयं विसर्जित' पंक्ति के द्वारा कवि दीप को

'स्व' का भाव प्रदान करता है कि व्यक्ति अपनी अलग पहचान बनाते हुए समाज हित में समर्पित हो जाए तो अत्याधिक श्रेयसकर होगा। व्यक्तिगत सत्ता का यदि सामाजिक व राष्ट्रीय सत्ता में विलय हो जाए तो समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति सभी का उत्थान होगा।

कविता की भाषा खड़ीबोली है, और तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है। पनडुब्बा समिध, गोरस आदि में लक्षण और व्यंजना शब्द शक्ति, माधुर्य एवं ओज गुण है। प्रतीकात्मकता का प्रयोग किया है, 'दीप' 'व्यक्ति' का प्रतीक है। अनुप्रास, रूपक अलंकार है। प्रगीत शैली में लिखी गयी छन्द मुक्त कविता है।

डॉ. धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती (25 दिसंबर,1926-4 सितंबर 1997) आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। उनका जन्म इलाहाबाद के अतर सुइया मुहल्ले में हुआ। उनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माँ का श्रीमती चंदादेवी था। स्कूली शिक्षा डी.ए वी हाई स्कूल में हुई और उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में। प्रथम श्रेणी में एम ए करने के पी.एच.डी. प्राप्त की। उन्होंने अध्यापन और पत्रकारिता क्षेत्र में कार्य किया। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैः काव्य रचनाएँः ठंडा लोहा, साक गीत-वर्ष, कनुप्रिया, सपना अभी भी, आद्यन्त, मेरी वाणी गैरिक वसना, कुछ लम्बी कविताएँ; कहानी संग्रहः मुर्दों का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान, साँस की कलम से, समस्त कहानियाँ एक साथ; उपन्यासः गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा, ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ व समापन; निबंध : 'ठेले पर हिमालय, पश्यंती, पद्य नाटकः अंधा युगः आलोचना : प्रगतिवादः एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य।

थके हुए कलाकार से :-

'थके हुए कलाकार से' कविता भारती के प्रथम कविता संग्रह 'ठंडा लोहा' (1952) से ली गई हैं। यह उनका एक प्रसिद्ध आरंभिक गीत है। इस गीत की अंतर्वस्तु पूरी तरह से नए कवि की सृजन चेतना के मेल में है। गीत छायावाद था उत्तर-छायावादी गीतों से बहुत दूर नहीं है, लेकिन इसमें कुछ ऐसा है, जिससे नई कविता की राह निकलती लगती है। वह है इसकी लय, इसकी बिबं योजना, इसका शब्द-प्रयोग और इसमें मिलनेवाला हलका-सा बौद्धिक स्पर्श। पूरा गीत एक ऐसी लय से रचित है, जो नए मनोभाव की सूचना देती है।

'अभी तो पलक में नहीं खिल सकी
नवल कल्पना की मृदुल चाँदनी'-

- में शब्द पुराने होते हुए भी बिंब नया है।

इसी तरह 'अधूरे सृजन से निराशा भला

किसलिए जब अधूरी स्वयं पूर्णता?'-

- में जो तार्किकता है, वह स्वाभाविक रूप से

अपने साथ गद्यात्मक भाषा ले आई है।

इस कविता में कवि का स्वस्थतम एवं सन्तुलित मन की अभिव्यक्ति मिलती है और जहाँ समूची शक्ति से अन्तर्मन से जूझा है। 'ठण्डा लोहा' कविता में निराशा की कुण्ठा थी- 'थके हुए कलाकार से' जैसी कविताओं के माध्यम से 'अधबनी धरा' नूतन सृजन केलिए प्रेरित करते है। भारती की भाषा भावानुगामिनी है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

"सृजन की थकन भूल जा देवता।
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अभी तो पलक में नहीं खिल सकी
नवल कल्पना की मृदुल चाँदनी
अभी अधखिली ज्योत्स्ना की कली
नहीं ज़िन्दगी की सुरभि में सनी!
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी"

यह पंक्तियाँ धर्मवीर भारती की कविता 'थके हुए कलाकार से' लिया गया है। यह कविता उनके कविता संग्रह 'ठंडा लोहा' से लिया गया है। यह एक प्रसिद्ध आरंभिक गीत है। इसके माध्यम से नई कविता की राह निकलती लगती है। इसकी अंतर्वस्तु पूरी तरह नए कवि की सृजन चेतना से है।

इस कविता के माध्यम से अधबनी धरा के नूतन सृजन केलिए प्रेरित करते है। नई कविता की लय, इसकी बिंब योजना, इसका शब्द-प्रयोग और इसमें मिलनेवाला हलका-सा बौद्धिक स्पर्श। पूरा गीत एक ऐसी लय में रचित है, जो नए मनोभाव की सूचना देती है। 'अभी तो पलक, में नहीं खिल सकी, नवल कल्पना की मृदुल चाँदनी में शब्द पुराने होते हुए भी बिंब नया है। इस गीत की अंतर्वस्तु पूरी तरह से नए कवि की सृजन चेतना के मेल में है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

15 सितम्बर सन् 1927 को उत्तर प्रदेशा के बस्ती ज़िले में जन्मे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। वाराणासी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय से शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत आपने अध्यापन तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य किया। आप आकाशवाणी में सहायक निर्माता; दिनमान के उपसंपादक तथा पराग के संपादक रहे। यद्यपि आपका साहित्यिक जीवन काव्य

से प्रारंभ हुआ तथापि 'चरचे और चरखे' स्तम्भ में दिनमान में छपे आपके लेख खासे लोकप्रिय रहे। सन् 1983 में आपको अपने कविता संग्रह 'खूँटियों पर टंगे लोग' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। आपकी रचनाओं का अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। कविता के अतिरिक्त आपने कहानी, नाटक और बाल साहित्य भी रचा। 24 सितम्बर 1983 को हिन्दी का यह लाडला सपूत आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त हुआ। 'काठ की घाटियाँ', 'कविताएँ- 1', 'कविताएँ- 2', 'जंगल का दर्द' और 'खूँटियों पर टंगे लोग' आपके काव्य संग्रह हैं। 'उड़े हुए रंग' आपका उपन्यास है। 'सोया हुआ जल' और 'पागल कुत्तों का मसीहा' नाम से अपने दो लघु उपन्यास लिखे। 'अंधेरे पर अंधेरा' संग्रह में आपकी कहानियाँ संकलित हैं। 'बकरी' नामक आपका नाटक भी खासा लोकप्रिय रहा। बालोपयोगी साहित्य में आपकी कृतियाँ 'भौं-भौं-खों-खों', 'लाख की नाक', 'बतूता का जूता' और 'महंगू की टाई' महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'कुछ रंग कुछ गंध' शीर्षक से आपका यात्रा-वृत्तांत भी प्रकाशित हुआ। इसके साथ-साथ आपने 'शमशेर' और 'नेपाली कविताएँ' नामक कृतियों का संपादन भी किया।

मेरे भीतर की कोयलः-

मेरे भीतर की कोयल 'सक्सेना' जी के प्रेम भरी कविता है। कविता अपनी अनुभूतियों और कलात्मक रचाव के कारण संवेदनाओं को बड़े गहरे तक छूती है, छेड़ती है और कभी बहुत देर तक सोचने केलिए विवशा कर देती है। यह कविता प्रेम की प्रेरणा वर्णन करता है। उनके भीतल का मन कोयल की तरह कूहू-कूहू कर रहा है। कोयल यहाँ मन या आत्मा का प्रतीक है।

सुदामा पांडेय धूमिल

धूमिल (9 नवम्बर 1936-10 फरवरी 1975) का जन्म वाराणसी के पास खेवली गाँव में हुआ था। उनका मूल नाम सुदामा पांडेय था। उनके पिता का नाम पंडित शिवनायक था और माँ का नाम रसवंती देवी था। सन् 1958 में आआ टी आई (वाराणसी) से विद्युत डिप्लोमा लेकर वे वहीं विदयुत अनुदेशक बन गये। 38 वर्ष की अल्पायु में ही ब्रेन ट्यूमर से उनकी मृत्यु हो गई। उनकी कविताओं में आजादी के सपनों के मोहभंग की पीड़ा और आक्रोश की सबसे सशक्त अभव्यक्ति मिलती है। व्यवस्था जिसने जनता को छला है, उसको आइना दिखाना मानों धूमिल की कविताओं का परम लक्ष्य है। उन्हें मरणोपरांत 1979 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनकी रचनाएँ हैं : संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे, सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र।

अकाल दर्शनः-

धूमिल केलिए कविता शब्दों का खेल मात्र नहीं, बदलाव का एक सशक्त हथियार है। यह जनता को जनतंत्र की हकीकत खोलकर दिखाने का आइना है। उनकी अकाल दर्शन कविता इस अर्थ में एक

महत्वपूर्ण कविता है। कविता का केन्द्रिय कथ्य है- आम आदमी की तटस्थता पर चोंट। इसकी प्रतिनिधि पंक्तियाँ है- 'अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं।'

कविता की शुरुआत सवाल- जवाब की शैली में होती है। आत्मकथात्मक अन्दाज में, सवाल कई हैं। भूख का सवाल; जनसंख्या का सवाल, बेकारी का सवाल। जवाब कोई नहीं है। सिर्फ एक व्यंग्यपूर्ण हँसी है। वह चालाक आदमी जो जनहिन की आड़ लेकर अपना सारा दोषारोपण जनसंख्या वृद्धि पर थोपकर निश्चिंत हो जाता है।

जब सवालों का जवाब 'प्रतिपक्ष' से नहीं मिलता तो खुद से तलाश शुरू होती है। और तब धूमिल के चिन्तन का एक और पक्ष सामने आता है। वे मध्यवर्गीय भीरूपन से टकराते हैं। उस मानसिक गुलामी से टकराते है जो 'आजादी और गाँधी के नारों में उलझा है, नेताओं के पीछे जलसों और जलसों में उलझा है; अकाल ने जिसका चेहरा झुलसा दिया या कि जिसका आधे से ज्यादा शरीर भेड़ियों ने खा लिया है। (सूखकर ठठरी हुए आदमी केलिए) वैसे आम जन की खामख्याली से टकराते है। वे इस नब्ज पर अंगुली रखते हैं कि 'यह ख्याल ही उनका हत्यार है। वे इस बात से परेशान है कि जब तक अपराध के असली मुकाम पर अंगुली न रखी जाए, उस मुहावरे को डिकोड न किया जाए जिसने आजादी एवं गाँधी के नाम पर उलझा रखा है, तब तक बदलाव सम्भव नहीं है। उन्हें लगता है कि प्रतिरोध की आवाज़ पैदा करने की बजाय जनता जब तक अपनी हालत पर तरस खाकर रशद बाँटने वाले, अनाज बाँटने वाले 'उस आदमी' (नेताओं) की नीयत नहीं समझती बदलाव की आशा करना व्यर्थ है। धूमिल प्रतीकों की भाषा में बात करने की जगह 'प्रजातंत्र' की कमजोरी पर सीधे चोट करते हैं जिसने आम आदमी के चेहरे को झुर्रीदार और धनवानों के चेहरे को लोचदार बना रखा है।

कविता का अन्त एक तरह की खीझ से हुआ है। खीच तटस्थता के, विरक्ति के प्रति। अपने हालात से समझौता कर अकाल को सोहर की तरह गाने की प्रवृत्ति के प्रति। उन्हें लगता है कि जनता किसी भी तैयार नहीं है। क्रान्ति केलिए तैयार नहीं है। वह युद्ध के उन्माद में एकता दिखाने केलिए तैयार है परन्तु अपनी स्थितियों से लड़ने को

MODULE - III

समकालीन हिन्दी कविता

सन् 1960 के बाद की कविता को अनेक नाम दिए गए जिनमें प्रमुख हैं- साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता, अकविता, अभिनव कविता, युयुत्सावादी कविता, बीट कविता, अस्वीकृत कविता, अति कविता, सहज कविता, निर्दिशायामी कविता आदि।

समकालीन कविता समाज की मान्यताओं, परम्पराओं से मोहभंग व्यक्त करती है।

इस कविता में जीवन के सीधा साक्षात्कार है। उसमें जीवन की खीझ, असन्तोष, निराशा, कुंठा, कड़वाहट के स्वर अधिक है।

भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता, विसंगति, आक्रोश, विडम्बना की पूर्ण अभिव्यक्ति समकालीन काव्य में हुई है।

समकालीन कवियों में से कुछ प्रमुख कवि हैं- विश्वनाथ तिवारी, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, दूधनाथ सिंह, 'धूमिल', लीलाधर जंगूड़ी, वेणु गोपाल, मत्स्येन्द्र शुक्ल, विष्णु खरे, देवेन्द्र कुमार, श्याम विमल, विजय कुमार, परमानन्द श्रीवास्तव, आलोक धन्वा, अमरजीत, प्रताप सहगल, अरुण कमल,अनिल जोशी। आधुनिक समाज के बदलते परिवेश में देश-विदेश का हर साहित्य अपना अपना नया रूप गढ़न करता है। समाज का यह परिवर्तन कभी-कभी पुरानी परंपराओं को तोडते हुए, कभी उसमें कुछ नयापन लाते हुए, कभी एकदम नये रूप को प्रकट करते हुए प्रत्यक्षीभूत होता है। साहित्य इन परिवर्तनों को ध्यान में रखकर इन में अपने लिए कुछ समेटते हुए नई विधाओं के रूप प्रकट कराते हैं। दलित साहित्य, स्त्री विमर्श परक साहित्य, परिस्थिति विशेष का साहित्य आदि इन नई विधाओं में आते हैं। इन विधाओं में अभी तक का इनके रूप-रंग, गुण-दोष, उन्नति-अवनति, कमियाँ-खूबियाँ आदि सभी की चर्चा हो रही हैं।

स्त्री विमर्श परक साहित्य

नारीवाद राजनैतिक आंदोलन का एक सामाजिक सिद्धांत है जो स्त्रियों के अनुभवों से जनित है। हालांकि मूल रूप से यह सामाजिक संबंधो से अनुप्रेरित है। लेकिन कई स्त्रीवादी विद्वान का मुख्य जोर लैंगिक असमानता और औरतों के अधिकार इत्यादि पर ज्यादा बल देते हैं। समाज में नारी के प्रति जाग्रति लाना तथा नारी के अस्तित्व की, पहचान को स्थापित करने के प्रयास को ही नारीवाद अथवा नारी विमर्श कहा जाता है।

नारीवादी सिद्धांतो का उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना तथा इसके फलस्वरूप पैदा होने वाले लैंगिक भेदभाव की राजनीति और शक्ति संतुलन के सिद्धांतो पर इसके असर की व्याख्या करना है। स्त्री विमर्श संबंधी राजनैतिक प्रचारों का जोर प्रजनन संबंधी अधिकार, घरेलू हिंसा, मातृत्व अवकाश, समान वेतन संबंधी अधिकार, यौन उत्पीड़न, भेदभाव एवं यौन हिंसा पर रहता है। आधुनिक काल की शुरुआत से ही नारी विमर्श करनेवाली रचनाएँ होती रहती है। नारी विमर्श संबन्धी साहित्यिक लेखिकाओं में चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, कृष्णा अग्निहोत्री, निषा चन्दा आदि का नाम प्रथम श्रेणी में आते हैं। इन्होंने अपनी अपनी रचनाओं द्वारा स्त्री के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाया और स्त्री का अधिकार एवं अस्मिता दिलाने केलिए अपनी तूलिका चलायी भी है।

दलित साहित्य

दलित साहित्न से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रखकर हुए साहित्यिक आंदोलन से है जिसका सूत्रपात दलित पैंथर से माना जा सकता है। दलितों को हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म अछूत या अस्पृश्य माना गया। दलित साहित्य कि शुरुआत मराठी से मानी जाती है। दलित पैंथर आंदोलन के दौरान बडी संख्व्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीडाओं, दुखों- दर्दों को लेखों, कविताओं, निबन्धों, जीवनियों, कटाक्षों, व्यंगों, कथाओं आदि के माध्यम से पहुंचाया।

दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर लंबी बहसें चलीं। यह सवाल दलित साहित्य में प्रमुखता से छाया रहा -------- साहित्य कौन लिख सकता है, यानी स्वानुभूति ही प्रामाणिक होगी या सहानुभूति को भी स्थान मिलेगा। प्रमुख दलित साहित्यकारों ने कहा चूंकि सवर्णों ने दलितों की पीडा को भोगा नहीं, इसलिए वे दलित साहित्य नहीं लिख सकते। हालांकि यह मत ज्यादा दिनों तक टिका ----, लेकिन आरंभ में बहस का मुद्दा बना रहा। यह प्रश्न मराठी की तुलना में हिंदी में अधिक उठा। अंत में इस बात पर राय बनती नजर आई कि दलित साहित्य अस्सी और नब्बे के दशक में उभरा एक साहित्यिक आंदोलन आंदोलन है जिसमें प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने हिस्सा लिया और इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्ष किया। हालांकि साहित्य में दलित वर्ग की उपस्थिति बौद्ध काल से मुखरित रही है किंतु एक लक्षित मानवाधिकार आंदोलन के रूप में दलित साहित्य मुख्यतः बीसवीं सदी की देन है। हिन्दी के दलित कथा साहित्यकारों में ओं प्रकाश वाल्मीकि, सुशीला टाकभौरे, सूरज पाल चौहान, नीरा परमार आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

परिस्थिति साहित्य

आजकल पूरे संसार में परिस्थिति को बचाने की चर्चा हो रही है। आधुनिकता के नाम पर हर कहीं मानव अपने पर्यावरण को तरह चोट पहूँचायी गयी है। पर्यावरण की सुरक्षा पूरी जीव-जन्तुओं की सुरक्षा है। बात पर बल देकर लिखे जाने वाले साहित्य ही परिस्थिति साहित्य के अन्दर आते हैं। समाज को पर्यावरण प्रदूषण का बोध कराना, प्रदूषण से बचाने का ज्ञान बढ़ाना, मानव और प्रकृति के अटूट संबन्ध का याद दिलाना ही परिस्थिति साहित्य का उद्देश्य है। संसार के सारे जीव-जन्तुओं को यहाँ जीने का अधिकार है। वृक्ष-लतादियों से लेकर हर-पशु-पक्षी अन्योन्याश्रित है। इनका आपसी संबन्ध जब टूट जाता है तब से पर्यावरण का विनाश हो जाता है। पेडों का संरक्षण, प्रकृति का संरक्षण आदि मानव जाति के लिए कितना श्रेष्ठ होता है, आवश्यक होता है यह जानना ज़रुरी है। ऐसी बातों को प्रस्तुत करके इनपर लोगों का ध्यान ले चलना पर्यावरण संबन्धी साहित्य का लक्ष्य है। नासिरा शर्मा, जयानन्दन, अखिलेश श्रीवास्तव चमन, शिव अवतार पाल आदि हिन्दी के जाने माने साहित्यकार हैं जो पर्यावरण की चर्चा कराने योग्य रचनाएँ लिखते रहते हैं।

चन्द्रकांत देवताले

समकालीन हिंदी कविता के शीर्षस्त कवि है चन्द्रकांत देवताले। उनका जन्म मध्यप्रदेश के बेतूल जिले के जौलाखेडा गाँव में हुआ। रोश्नी के मैदान की तरह, भूखंड तप रहा है, पत्थर की बैंच (1996), उसके सपने आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। अपनी महत्वपूर्ण योगदान के कारण हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अनेक पुरस्कारों से सम्मानित देवताले जी की एक बहुचर्चित कविता है 'पत्थर की बैंच'।

पत्थर की बैंच:-

पुरानी पीढ़ी के अग्रणीय कवि श्री चन्द्रकांत देवताले की कविताओं में एक ओर मानवीय संवेदनाओं की आवाज़ है तो दूसरी ओर वर्तमान सामाजिक विद्रूपताओं द्वारा कठोर प्रहार भी किया है। पत्थर की बैंच में उन्होंने वर्तमान पीढ़ी की पुकार को वाणी दी है। कवि के अनुसार पत्थर की बैंच उस थोड़ी सी सुविधा का प्रतीक है, जो समाज के कमज़ोर व्यक्तियों को कभी कबार मिल जाया करती है। पर उसे पाने के लिए ही हाहाकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। आदमी, आदमी का गला भी घोंट सकता है। समाज में गिरते नैतिक मूल्यों पर कविता गहरी चिंता व्यक्त करती है।

'पत्थर की बेंच' कविता में एक पार्क की वर्षों पर पुरानी बेंच का चित्रण हुआ है। उस बैंच पर अनेक लोग विभिन्न भावनाओं वाले लोग आकर बैठते है। इन में बच्चें युवा, बूढ़ा, आदि सब है। बेंच पर एक रोता हुआ बच्चा बिस्कुट कुतरते हुए बैठता है। धीरे-धीरे उसका रोना बंध हो गया है। एक

थका युवक अपनी थकावट को दूर करने केलिए वहाँ बैठता है। वह अपने कुचले हुए सपनों को सहला रहा है। एक रिटयेर्ड बूढा दोपहर में इस बेंच पर बैठक अपने हाथों से आँखें ढाँपकर सो रहे है। वहाँ दो व्यक्ति, चाहे-पति पत्नी हो या प्रेमी-प्रेमिका, जिन्दगी के सपने बुन रहे है। इनमें बैठकर सब व्यक्तियों को ज़रा आश्वास भी मिलता है। कवि कहते है कि वह पत्थर की बेंच वर्षों पुराना है, जो सुख-दुख, प्रेम-थकान, विराम आदि का साक्षी है

बच्चे से बूढे तक सभी पीढ़ी के लोग अपने सुख-दुख में इस बेंच का सहारा लिया है। वर्षों पुरानी यादे उस पर अंकित है। कवि की आशंका यह है कि इसके लिए भी एक दिन हत्याओं की परंपरा शुरू हो सकता है। स्वार्थता से मानव इसें उखाडकर ले जाए या तोड दें, यह बेंच कब बनी, किसने बनवाई, इसके इतिहास क्या है, कौन इसपर पहलीबार बैठा होगा, आदि बाते अब भी अज्ञात है।

प्रस्तुत कविता में कवि ने पत्थर की बैंच को समाज के कमज़ोर व्यक्तियों की थोडी सी सुविधा के रूप में चित्रित किया है। उस थोड़ी सी सुविधा के लिए भी उन्हें सदा लड़ना पड़ता है। क्योंकि समाज में ऐसे कुछ लोग है जो हमेशा दूसरों का हक छीनकर जीना पसंद करते है। अथवा अपना अधिकार समझते है। ऐसे शोषक वर्गों का शिकार बनना साधारण जनता की नियति है। अपनी थोड़ी सी सुविधाओं से भी वंचित होकर शोषक वर्गों का गुलाम बनकर जीने के लिए वे मज़बूर होते है। आम जनताओं को सुख-दुख में सहारा देनेवाले पत्थर की बेंच को उखाड़कर केंकने या तोड़ने के लिए भी वे नहीं हिचकते। उनकी थोड़ी सी सुविधाओं को भी अपनाने के लिए हत्याओं की परंपरा शुरू होने में काफी देर नहीं होगा। अंत में बडे आश्चर्य से कवि कहते हैं कि-

"पता नहीं सबसे पहले कौन आसीन हुआ होगा
इस पत्थर की बेंच पर।"

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में 'पत्थर की बेंच' इनसानियत और सामाजिकता का प्रतीक भी है। भाईच सहानुभूति, प्यार सहयोग, अपनापन आदि मानवीय मूल्यों सहित आपस में मिलजुलकर रहने की शिक्षा पत्थर बेंच देती है। लेकिन आज जीवन की सुख-सुविधाएँ इतनी बढ़ गई है कि मनुष्य अधिक स्वार्थी और आत्मकें बना हुआ है। मानव-मानव के बीच दया, करुणा, सहानुभूति आदि जैसे भावों का हास हो गया है। उनके लिए पत्थर की बेंच उखाड़कर केंकने केलिए हिचकिचाहट नहीं होती है। यहाँ धर्म, जाति एवं संपत्ति के दायरे में फसे वर्तमान जनता पर कवि हँसी उठाते है। अत्यन्त सरल भाषा में लिखित यह कविता वर्तमान समाज का दस्तावेज़ है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए

"पत्थर की बैंच

जिसपर रोता हुआ बच्चा

.....

जिसपर वे दोनों

ज़िंदगी के सपने बुन रहे हैं।"

यह कवितांश गद्य कविता 'पत्थर की बैंच' से प्रस्तुत है। 'पत्थर की बैंच' समकालीन कविता है। इस कविता के कवि हैं सुप्रसिद्ध समकालीन कवि चन्द्रकान्त देवताले।

कवि देखते हैं कि पार्क में वर्षों पुरानी एक पत्थर की बैंच पडी है। कवि उस बैंच के चार दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत करते है एक दृश्य में एक रोनेवाला बच्चा पत्थर की बैंच पर बैठ कर रोता है। थका हुआ युवक अपने कुचले हुए सपनों को सहलाकर बैंच पर बैठ है। तीसरे दृश्य में एक रिटायर्ड बुढ़ा भरी दोपहरी में हाथों से आँखों ढाँपकर सो रहा है। चौथा दृश्य एक प्रम- जोडा का है जो बैंच पर बैठकर जिंदगी के सपने बुन रहे हैं।

कवितांश प्रतीकात्मक है। पत्थर की बैंच सार्वजनिक स्थल का प्रतीक है। उसपर बैठे चार प्रकार के लोग साधारण आमजनता का प्र-- है। पत्थर की बैंच जैसे सार्वजनिक स्थलों के संरक्षण करने की आवश्यक की सूचना कवितांश में निहित है। सार्वजनिक स्थलों का संरक्षण करना आवश्यक है, क्योंकि ऐसे स्थलों साधारण लोगों के अनियंत्रित संवेदनाओं से भरी हुई है।

कवितांश गद्यकविता की शैली में है। भाषा सरल और प्रवाहमय है। कवितांश द्वारा कवि के आशय हममें लाने में कवि सफल हुए हैं।

"*पत्थर की बैंच*

जिसपर अंकित है आँसू, थकान

.....

पता नहीं सबसे पहले कौन आसीन हुआ होगा

इस पत्थर की बैच पर"

यह कवितांश गद्य कविता 'पत्थर की बैंच' से प्रस्तुत है। 'पत्थर की बैंच' समकालीन कविता है। इस कविता के कवि हैं सुप्रसिद्ध समकालीन कवि चंद्रकांत देवताले।

कवि ने देख के पत्थर की बैंच के इतिहास में और थकान, विश्राम, प्रेम जैसे अनेक मानुषिक विकार अंकत है। लेकिन यह सब जाननेवाला कवि आशंकित हो जाता है। यह इसलिए है कि किसी दिन इस पत्थर की बैंच के लिए हत्याओं का सिलसिला शुरू हो सकता है। उसे उखाड कर ले जाया सकता है। अथवा तोड भी जा सकता है। कवि को यह नहीं मालूम है कि सबसे पहले इस पत्थर की बैंच पर कौन आसीन हुआ होगा? अर्थात् कवि डरता है कि इस पत्थर की बैंच के बारे में अधिकार स्थापित करने केलिए कब लडाई शुरू हो जायेगी।

कवितांश प्रतीकात्मक है। पत्थर की बैंच सार्वजनिक स्थल का प्रतीक है। पत्थर की बैंच जैसे सार्वजनिक स्थलों के संरक्षण करना की आवश्यकता की सूचना कवितांश में निहित है। सार्वजनिक स्थलों का संरक्षण करना आवश्यक है, क्योंकि ऐसे स्थल साधारण लोगों के अनियंत्रित संवेदनाओं से भरी हुई है। जाति, धर्म, राजनीति, स्वार्थता आदि के नाम पर और उनकी सस्ती प्रतिस्पर्द्धा केलिए सार्वजनिक स्थलों का शिकार बनकर उन्हें सत्यनाश न करना चाहिए। कवितांश गद्यकविता की शैली में है। भाषा सरल और प्रवाहमय है। कवितांश द्वारा कवि के आशय हममें लाने में कवि सफल हुए हैं।

अनामिका

वर्तमान समय की चर्चित कवयित्रियों में से एक है अनामिका। उन्होंने अपनी कविताओं के द्वारा नारी विमर्श को एक नया आयाम प्रदान किया है। वे बहुत ही साधारण भाषा में अत्यंत प्रभावी बातें कह जाती है और अपनी कविताओं के माध्यम से नारी जीवन के विसंगतियों का यथार्थ पाठकों के सामने सीधे सादे रूप में रख देती है। गलत पत्ते की चिट्ठी, बीजाक्षर, कहती है औरतें, कविता में औरत, दस द्वारे का पिंजरा, खुरदूरी हथेलियाँ आदि उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ है। उनकी एक बहुचर्चित कविता है 'सेफ्टी पिन'।

सेफ्टी पिनः-

स्त्री जीवन की तमाम आहों को शब्द बहद करनेवाली कविता है सेफ्टी पिन। अनामिका इस प्रतीक के माध्यम से वर्तमान बोध को मुखरित करती है। व्यस्त जीवन का पूरा भावाभाव इसमें अभिव्यक्त है। वह जंगाया सा सेफ्टी पिन है जो सावित्री पाठक की लाल काँच की चूटियों से पेंटुलम की तरह लडका डोल रहता है। एमर्जेन्सी वार्ड में डॉक्टर की तरह है उसके जीवन में सेप्टी पिन, जिससे वह जीवन की सारी आपत्कालीन स्थितियाँ पार करती है। जंग स्त्री जीवन की रूढता बासीपन एवं जर्जर परम्परा का प्रतीक है।

हमारे जीवन के हर पहलुओं पर सेफ्टी पिन का काम आता है। कभी कभी बच्चों की टूटी हुई पैंट की बकल में भी। जहाँ कुछ टूटा हुआ है और जहाँ कुछ छुटा हुआ है, सब कही सेफ्टी पिन का काम आता है। मध्यवर्गीय जीवन की तमाम उलझन, उलाहन तथा आत्म तुष्टी सेफ्टी पिन में है। स्त्री के जीवन के सभी अभावों की पूर्ती एक सेफ्टी पिन ही करता है। मतलब यह है कि औरत अपनी ज़िदगी की सारी समस्याओं को चुपचाप सहकर उन्हें सुलझाने का खूब प्रयास करती है। असल में सेफ्टी पिन स्त्रीयों का जीवन साथी बन गया है।

जीवन की सभी परेशानियाँ अपने अंदर-ही-अंदर दबाकर-बाहर अपने को खुश, सबल और सफल दिखानेवाली नारी का चित्र अनामिका हमारे सामने रखती है। जो हमें बताती है कि ज़िदगी एक एडजेस्टमेन्ट है। दाम्पत्य को परिवार को, सर्वोपरी अपनी व्यक्ति सत्ता को एक साथ लेकर आगे बढना स्त्री के लिए आसान काम नहीं है। नारी अपने ढेर सारे दुख, अभाव शिकायतें और झँझटें सेफ्टी पिन में छिपाती है।

मंडी में आलू-गोभी के संवाद से स्त्री पूरे जीवन की तस्वीर हमें मिल जाता है।

अंत में कवयित्री कहती है कि स्त्री की जिंदगी में सेफ्टी पिन ही एकमात्र सहारा बन गया है। दिन-रात-शाम-सुबह हर समय वही उसकी जीवन साथी है। अर्थात उसकी पूरी ज़िदगी सेफ्टी पिन से तन्थी किये रखती है। वह स्त्री के जीवन में इतना मिल-जुल गया है कि नारी अपनी तकलीफें, उम्मीदें, आस्याएं, बगावतें, सब उसमें छिपाती है। और बाहर अपने को खुश दिखाने की कोशिश भी करती है।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता स्त्री जीवन की तमाम आहों को शब्द बद्ध करती हुई हमारे सामने आती है। असल में अनामिका सेफ्टी पिन के माध्यम से वर्तमान बोध को मुखरित करती है। व्यस्त जीवन के पूरे भावाभाव अभिव्यक्त इस कविता में अपनी सारी परेशानियाँ अपने अंदर ही जमाकर जीवन बितानेवाली नारी का मार्मिक चित्रिण करने का सफल प्रयास भी कवयित्री ने किया है।

MODULE - IV

दुष्यन्त कुमार (1-9-1933 to 29-12-1975)

दुष्यंत कुमार त्यागी का जन्म 1 सितंबर 1933 ई में उत्तरप्रदेश के राजपुर नवादा गाँव में हुआ। उनका पहला काव्य संग्रह 'सूर्य का स्वागत' सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। आवाज़ों के घेरे, जलते हुए वन का वसंत आदि उनके अन्य काव्य संग्रह है। छोटे-छोटे सवाल, आंगन में एक वृक्ष उनके उपन्यास है।

एक कण्ठ विषपायी :-

'एक कंठ विषपायी' उनका महत्वपूर्ण खंडकाव्य है। इस खंडकाव्य के माध्यम से उन्होंने युद्ध के भयानक परिणामों को दिखाकर दूसरे विश्व युद्ध की विभीषिका और तृतीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी परिणामों की चेतावनी दी है।

कथानक

'एक कंठ विषपायी' स्वर्गीय दुष्यंत कुमार का सशक्त काव्य नाटक है। इसमें 'शिवपुराण' के सतीदाह प्रसंग को आधार बनाकर कवि ने आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत किया है। इसका कथानक क्रमशः वीरिणी, सर्वहत, शंकर तथा ब्रह्मा आदि चार अंकों में विभाजित है।

नाटक का प्रथम अंक दक्ष द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ में शंकर को आमन्त्रित न करने से संबंध है। दक्ष की पुत्री सती का शिव से विवाह होने से दक्ष उद्वेलित है। सती द्वारा शिव के वरण को वे शिव द्वारा सती का अपहरण मानते हैं। उन्हें लगतका है कि शिव ने उनके यज्ञ पर कलंक लगाया है। उनके द्वारा आयोजित यज्ञ में तीनों लोकों के प्रतिनिधि आमंत्रित है। वीरिणी, लोक मर्यादाओं के पालन हेतु अपना जामाता शिव को यज्ञ में आमंत्रति करने की आवश्यकता समझाने की कोशिश करती है। किन्तु दक्ष शिव को जामाता तो दूर उन्हें संबंधी मानने में भी स्वयं को अपमानित अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्ति को अपने घर अतिथि-रूप में आमंत्रित करना भी उन्हें अस्वीकार है। वे अपनी कूटनीति से शंकर की अवहेलना कर उनका देवत्व झुलसाना चाहते हैं। लेकिन यज्ञ की तैयारी चल रही थी कि वहाँ सती आ जाती है। अपने पति शंकर के लिए कोई स्थान न पाकर तथा दक्ष से भर्त्सना भरी बातें सुनकर पति के अवमान से अपमानित सती यज्ञ में जलकर आत्मत्याग कर देती है।

द्वितीय अंक में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं के बीच यज्ञ ध्वंस से संबधित वार्तालाप चल रहा है। वे शंकर के दुर्व्यवहार पर ब्रह्मा से दंड देने का आग्रह प्रकट करते हैं। बीच में जनता का प्रतिनिधि पात्र 'सर्वहत' आकर युद्ध तथा उसके परिणाम के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त

करता है। जनता की यही नियति है कि युद्ध की रीति-नीति, आवश्यकता-अनावश्यकता और कारणों-परिणामों से अनविज्ञ उसे ही सब यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

तृतीय अंक में शंकर का विलाप चित्रण है। शोकग्रस्त, प्रियाहीन शिव प्रतिशोध के लिए अपना सारी सेना-गणों को बुलाकर त्रिलोक में प्रलय करने का आदेश देते है। शिव की स्तुति कर वरुण तथा कुबेर देवताओं पर कृपा की बिनती करते है। पत्नी वियोग से विचलित होने की अपेक्षा शिव सती को अपनी बाहों में उठाकर चंदन और, पुष्पों से उसका श्रृंगार करना चाहते हैं। वे संध्या समय तक मृत शरीर में चेतना न उत्पन्न होने पर भीषण रक्तपात का निश्चय कर लेते हैं।

चतुर्थ दृश्य में शिव देवलोक पर आक्रमण करते है। युद्ध की समस्याओं को लेकर देवताओं में विवाद है। इन्द्र आवेश में युद्ध का पक्ष लेते हैं। जिसकी प्रतिक्रिया में वरुण, कुबेर, तथा शेष उत्तेजित हो उठते हैं। भीड़ अपना स्वर इसी स्वर में मिलाती है। ब्रह्मा शासन, छोड़ने को तैयार हूँ बल्कि युद्ध की अनुमति नहीं दे रहे हैं। क्योंकि वे उसे सामूहिक आत्माघात ही समझते हैं। इतने में विष्णु का आगमन होता है। बातों के अंत में विष्णु अपने प्रणाम बाण शंकर के चरणों पर छोड़ देते हैं और बाण के दूसरे फलक से शंकर के कंधे पर पड़े हुए भगवती सती के शव को खंड खंड कर दिशा-दिशा में छितरा देते हैं और युद्ध टल जाता है।

दुष्यंत कुमार ने कथा को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। परिवर्तन नियति का नियम है। हमेशा पुरानी परिपाटियों पर विश्वास रखकर चलना उचित नहीं है। क्योंकि कुछ दिनों के बाद यह पुरानी परंपराएँ नष्ट होकर, नये मूल्यों का उदय होता है। सती की मृत्यु पर उसके शव को छोड़ने की अपेक्षा उसे सुन्दर एवं सनातन मानकर अपने कंधों पर लादकर घूमते है। कवि ने शंकर के इस मोह ग्रस्त प्रसंग को उठाकर उसे आधुनिक पृष्ठ भूमि एवं यथार्थ धरातल पर नये संदर्भों में प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। इसके साथ साथ उन्होंने पौराणिक कथा का आधार लेकर उसके माध्यम से आधुनिक प्रजातंत्रीय पद्धति, शासन का मोह, सामाजिक विषमता, लोगों की निराशा, अस्थिरता, निरर्थकता, युद्ध तथा उसके दुष्परिणाम आदि अनेक विध समस्याओं को इस काव्य नाटक में अंकित किया है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

सती

सती आधुनिक भारतीय नारी का एवं प्रतीकार्थ में मृत परंपरा का प्रतीक है। नाटक के एक दृश्य में सूच्य तथा तृतीय दृश्य में शव के रूप में सती का अस्तित्व है।

सती दक्ष की पुत्री है, जिन्होंने कठोर व्रत से शंकर का वरण किया है। इस पर दक्ष दुखी तथा क्रोधित है। यह विवाह उन्हें अपने यज्ञ पर कालिख प्रतीत होता है। वे शंकर को अपमानित करने के लिए विराट यज्ञ का आयोजन करते हैं। यज्ञ योजन में सती अपने प्रति शंकर की अवज्ञा देखकर क्रोध में सभी निमंत्रितों को भला-बुरा कहती है। पति की अवज्ञा सहन न कर स्वयं आत्मदाह कर लेती है।

दक्ष के अनुसार सती बालिका है, जिसे शंकर ने फुसलाया है। उनके अनुसार सती ने उसके घर की मर्यादा को अपमानित कर घर की लोक-प्रतिष्ठा की हत्या की है। उनकी माँ वीरिणी के अनुसार सती प्रेममय तथा उसकी भाषा सुकोमल है। वह पतिव्रता नारी है। उनके अनुसार पति की मर्यादा ही पत्नी की मर्यादा है। सती प्रत्यक्ष मंच पर न आकर भी अपना प्रखर अस्तित्व दिखा जाती है।

प्रजापति दक्ष

दक्ष अभिमानी और कूटनीतिक पात्र है। वे परंपराग्रस्त और सामंती व्यवस्था के प्रतीक हैं। व्यक्तिगत हठ एवं मिथ्या अहं से शिव को अपमानित कर युद्ध की स्थिति उत्पन्न करते हैं।

पुत्री सती के शंकर से विवाह के कारण वे दुखी तथा क्रोधित है। वे अपना माथा सारे समाज में झुका हुआ अनुभव करते हैं। यह विवाह उन्हें अपने यश पर कालिख प्रतीत होता है। पत्नी वीरिणी द्वारा ही समझाने पर भी वे शंकर को जामाता स्वीकारने को तैयार नहीं है। वे शंकर द्वारा सती का वरण अपहरण मानते हैं। उनके अनुसार शंकर ने उनकी बालिका के अबोध मन को फुसलाकर, देवत्व का जाल बिछाकर विविध प्रलोभन देकर अपहरण किया है। पुत्री ने उनके घर की, लोक प्रतिष्ठा की हत्या की है। क्रोधित दक्ष शंकर को सारे भद्र लोक से बहिष्कृत करने के लिए तथा अपनी बाह्य प्रतिष्ठा खंडन के प्रतिशोध में विराट यज्ञ का आयोजन करते हैं।

दक्ष राजनयिकों की भाषा और वर्तन से सिद्ध है। यज्ञ में उपस्थित होकर शंकर की अवज्ञा पर भला-बुरा कहनेवाली सती की प्रवृत्ति को दक्ष शंकर की चाल मानते हैं। क्रोधित एवं अविवेकी दक्ष अपनी पुत्री की भी अवज्ञा करने पर तुल जाते हैं। वीरिणी के आत्मघात की शपथ पर दक्ष में दुर्बलता जागती है। अतः शंकर के प्रति उनका आक्रोश पुत्री

सर्वहत

शंकर के बाद सर्वहत ही 'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक का प्रमुख किन्तु कल्पना प्रसूत पात है। वे कठोर, एवं अन्यायी शासकों द्वारा कुचली हुई क्षुब्ध, त्रस्त, घायल एवं बेचैन आधुनिक प्रजा का प्रतीक है। युद्ध तथा उसके परिणमों को भोगती हुई शोषित पीडित मानव संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने उसे प्रस्तुत किया है।

आरंभ में वह सेवक के रूप में आता है। सर्वहत पोषक द्वितीयांक में वह अधिक स्पष्ट एवं मुखर होकर कथा प्रसंग और संपूर्ण दृष्टि से जननायक के रूप में उभरता है। सती दाह पर शिव अनुचर गणो द्वारा दक्ष के यज्ञ स्थल पर रक्तपात तथा नगर की अवस्था छिन्न-भिन्न होती है। उस प्रसंग को झेल क्षत-विक्षत दशा में सर्वहत प्रवेशत है। सत्ता वि पिपासु सामन्ती वर्ग को जनता के भीषण संहार उत्पीडन से कोई लेन देन नहीं है। इसे सर्वहत उपहास तथा व्यंग्य भरा स्वर देता है।

शासन पर प्रजा का उतना ही अधिकार होता है जितना कि शासकों का लेकिन प्रत्यक्षतः उन्हें न कोई अधिकार है, न कोई स्वतंत्रता। बल्कि सत्ताधारिया के अन्याय, अत्याचारों उनकी भूलों के परिणामों को गुचाप सहना ही उनकी जिन्दगी बन गई है। जनता के प्रतिनिधि पात्र सर्वहत ने व्यंग्य के साथ ठीक ही कहा है-

मैं!
मैं कौन हूँ?
शायद मैं राजा हूँ
शायद में शासन का प्रतिनिधि हूँ
या मैं राज्य की प्रजा हूँ
या शायद मैं कुछ भी नही हूँ
और सबकुछ हूँ।"

जनता की सबसे बड़ी आवश्यकता रोटी की है। सर्वहत भी रोटी पाने की आशा में भटकता है। वह न मिलने पर वेदना मिटाने को मदिरा चाहता है। असह्य होकर वह ब्रह्मा-विष्णु से परिस्थितियों तथा उत्तरदायित्व का उत्तर माँगती है। यहाँ उसका क्षोभ और अधिकार जागृत होता है। अतः वे उसे अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर करता है ।

वरुण को सर्वहत शंकर की हिंसा का जीवित प्रतिरूप दिखाई देता है। विष्णु के अनुसार वह युद्धोपरांत उग आई संस्कृति के और ह्रासमान मूल्यों का भग्नप्राय स्तूप है। ब्रह्मा के अनुसार सर्वहत अपनी स्थिति संदर्भों से कटा समय का शाप है जो वर्तमान पर भार है। जो भी हो शासन के गलत निर्णयों में फसल की भांति विनयी, निर्विविद बिछनेवाली, उफा तक न करनेवाली जनता का आक्रोश सर्वहत व्यक्त करता है।

कवि की दृष्टि जन सामान्य की ओर अधिक है इसलिए उन्होंने सर्वहत के चरित्र को ऊपर उठाकर उसके प्रति सहानुभूति दिखाने की कोशिश की है।

पर न उतारने की स्वीकृति देते हैं।

वे क्रोध और अपमान की भावना में बहकर शंकर तथा सती से संबंध समाप्ति की घोषणा करते हैं। किसी प्राणी को बंदी बनाकर उससे खेलना सहज मानते हैं। अतः राजकुमार सुलभ द्वारा बंदी चिड़िया को मुक्त कराने का विरोध करते हैं।

वास्तव में परंपरा को जीवित रखने के लिए दक्ष युद्ध का ही आयोजन करते हैं और उसमें अप्रत्यक्ष रूप से महादेव शंकर को निमंत्रण देते हैं।

वीरिणी

'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक की नारी पात्रों में मातृहृदय से युक्त एवं पतिव्रत कर्तव्य से परिपूर्ण है। उसके मन में पुत्री सती एवं व्याखाता शंकर के प्रति अपार स्नेह है।

कथा की आवश्यकतानुसार उनकी भूमिका नाटक के प्रथम अंक तक सीमित है। शंकर के व्यवहार पर क्रोधित दक्ष उसे यज्ञ में निमंत्रित करना नहीं चाहते। लेकिन वीरिणी शंकर के संयम और देवत्व का बखान करती है। सती यज्ञ में पहूँचने पर वह अतिशय हर्षित तथा उल्लसित है। सती ने शंकर से विवाह कर अपने पिता से विद्रोह भले ही किया हो किन्तु वीरिणी माता की सहजता लिये हुए है। इसलिए सती को क्षम्य मानती है।

अन्याय का विरोध करने में वे सक्षम पत्नी के साथ सक्षम माता और कर्तव्यनिष्ठ राजमहिषी भी है। दक्ष का विरोध कर वह अपनी संतान, पति तथा राज्य की सुरक्षा चाहती है। वीरिणी नर-नारी संबंधों की सामाजिक मर्यादा में निष्ठा रखती है। वे परिणय को नारी की परिणति मानती है। पत्नी की मर्यादा पति की मर्यादा में स्वीकारती है।

वीरिणी को अनुभव होता है कि दुर्दिन, व्यक्ति का स्वतंत्रबोध चिंतन और प्रज्ञा हरते हैं, अनायास मन की वैचारिक स्थितियाँ प्रतिबंधित कर देते हैं। धर्मपरायण वीरिणी नियति के हाथों विवश है। पति को रोकने के उनके प्रयत्न विफल होते हैं। अंत में द्वारपालक द्वारा सती के आत्मदाह की असुभ सूचना पाकर वे ज़मीन पर बैठ ढुलक जाती है।

इस प्रकार वीरिणी की नारी सुलभ ममता और दया उनके अभूषण है। चिंतनशीलता उनके चरित्र का विशेष गुण है। वस्तुतः वीरिणी भारतीय संस्कृति की पोषिका नारी की प्रेरणाप्रद प्रतिनिधि है।

शंकर

'एक कंट विषपायी' में शंकर का व्यक्तित्व सबसे प्रबल और सामर्थ्यशाली है और वही नाटक का प्रमुख पात्र है। वह परंपरा भंजक भी है और परंपरा ग्रस्त भी प्रतीकात्मक रूप से वह क्रांतिकारी भी है।

शंकर प्रजापति दक्ष की पुत्री सती से विवाह करते हैं। वे दक्ष की अनुमति नहीं लेने। यहाँ शिव आज की युवपीढ़ी के परंपरा भंजक रूप के प्रतिनिधि है। शंकर जहाँ इतने सुकोमल और प्रेममय है, वहाँ कैलासनाथ, शंकर का आक्रोश भी असह्य है। वे साक्षात ब्रह्म है। इसीलिए वीरिणी अपने पति को उनसे वैर न लेने को कहती है। अपनी प्रिया सती की मृत्यु पर उनका व्यक्तित्व खंडित एवं विद्रोही बन जाता है। प्रिया मृत्यु पर वह युद्ध तत्पर होते है। किन्तु दक्ष द्वारा उन्हें युद्ध के लिए अप्रत्यक्ष निमन्त्रण ही हुआ है। अतः शंकर परंपरा पोषी दक्ष को दंडन तथा जर्जर परंपरा के भंजन हेतु युद्ध तत्पर होते हैं। यहाँ भी शंकर का परंपरा भंजक रूप द्रष्टव्य है।

शंकर सच्चे प्रेमी है। पत्नी की मृत्यु से अपना संतुलन शंकर अविनाशी, तत्वज्ञानी, सन्यासी शंकर मानवीय पीड़ी के पाश में करते जाते हैं। प्रियाहीन शंकर अपना व्यक्तित्व- विखंडित अनुभव करते हैं। भरी सभा में प्रिया के निरादृत होने तथा मरने से शंकर द्रवित है। यह दोनें द्वारा रचित विरुद्ध दुरभिसंधि मानकर उनसे युद्ध प्रेरित होते हैं। वे आत्मज योद्धाओं को जागने और ब्रह्मांड हिलाने का आदेश देते हैं। वे सध्या तक शव में चेतनता न भरते पर तीनों लोकों में तांडव की घोषणा करते है।

प्रियासक्त शंकर अपना विवेक खोकर अपने परंपरा भंजक रूप से विमुख होकर परंपरा (सतीशव) से जुडे रहते हैं। इसे ही सुंदर एवं सनातन मानकर हृदय से चिपकाये रहते हैं, कंधों पर डालकर घूमते हैं। विष्णु अपने विनम्र प्रणाम बाण द्वारा शिव के कंधे पर रखे शव को छितरा देते हैं। जिससे पुरानी सडांध भरी परंपराओं से मोहमुक्त होकर शिव नये सत्य की ओर प्रेरित होते हैं।

वास्तव में शंकर के कंठ की अपार क्षमताएँ हैं। केवल वे ही विषपायी है। अतः सदा की भांति नई परंपरा के पोषण हेतु, प्रिय की मृत्यु का, परंपरा के टूटने का विष पान कर लेते हैं। विष्णु की चुनौती की अपेक्षा उनका प्रणाम स्वीकार कर एक और युद्ध, रक्तपात मचाने की चिन्ता छोड बापस लौटते है

इस प्रकार शंकर को सशक्त, परंपरा द्रोही एवं परंपरा ग्रस्त व्यक्ति के रूप में अंकित किया गया है। उनके चरित्र में आधुनिक मानव की पीड़ा, विद्रोह कुंठा, आसक्ति, अन्तर्विरोध आदि को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता रही है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए

1. *"मुझे मान्य है*
   किन्तु देवि
   यह राजनयिकों की भाषा है
   इसकी शब्दावली अलग है।

इसमें उत्तम या उदात्त-से

भावों के अभिव्यक्तिकरण को

समुचित शब्द नहीं होते हैं।"

प्रस्तुत वाक्य दुष्यंतकुमार जी की 'एक कण्ट विषपायी' नाटक से लिया गया है। नाटक के पहला अंग में दक्ष, द्वारा आयोजित अश्वमेघ यज्ञ में शंकर को आमंत्रित न करने से संबंधित है। दक्ष की पुत्री सती का शिव से विवाह होने से दक्ष उद्वेलित है। इस प्रश्न पर वीरणी और दक्ष दोनों के बीच वार्तालाप किया रहा है। तब दक्ष वीरणी को कहते है कि- 'मुझे मान्य है.... शब्द नहीं होते हैं।

प्रस्तुत नाटक में दक्ष अभिमानी और कूट नीतिक पात्र है। वे परंपरा ग्रस्त और सामन्ती व्यवस्था का प्रतीक है। व्यक्तिगत हठ एवं मिथ्या अहं से शिव को अपमानित कर युद्ध की स्थिति उत्पन्न करते है।

2. *"इसलिए सम्भवतः जग में*

जब परम्परा का खण्डन कर

कोई नया मूल्य उठता है-

लोग उसे मिथ्या कहते हैं।"

प्रस्तुत वाक्य दुष्यंतकुमार का 'एक विषपायी' नाटक से लिया गया। त्रतीय दृश्य में शंकर का विलाप चित्रण है। शोक ग्रस्त, प्रियाहीन शिव प्रतिशोध केलिए अपना सारी सेनागणों को बुलाकर त्रिलोक में प्रलय करने का आदेश देते है। शिव की स्तुती कर वरुण तथा कुबेर देवताओं पर कृपा की बिनती करती है। शंकर की इस प्रवृत्ति देखकर वरुण और कुबेर के बीच बातचीत किया। कुबेर वरुण को कहते है-

"इसीलिए सम्भवतः जग में..... मिथ्या कहते है।"

प्रस्तुत नाटक में प्रियासक्त शंकर अपना विवेक खोकर अपने परंपरा भंजक रूप से विमुख होकर परंपरा (सती शव) से जुड़े रहते है। उसे ही सुंदर एवं सनातन मानकर हृदय से चिपकाये, रहते हैं, कधों पर डालकर घूमते है। इसप्रकार शंकर को संशक्त परंपरा द्रोही एवं परंपरा ग्रस्त व्यक्ति के रूप में अंकित किया गया है।

3. *"रक्षक ही भक्षक हो जाये*

तो कोई क्या कर सकता है?"

प्रस्तुत वाक्य दुष्यंतकुमार का 'एक कण्ठ विषपायी' नाटक से लिया गया है। तीसरा दगृश्य में साती के शव को लेकर शंकर चन्दन और पुष्पों से उसका श्रंगार करना चाहते है। वे संध्या समय तक

मृत शरीर में चेतना न उत्पन्न होने पर भीषण रक्तपान निश्चय कर लेते है। यहाँ शंकर का विलाप चित्रण प्रस्तुत किया है। शंकर की यह अवस्ता देखकर वरुण कुबेर को कहते है-

"रक्षक ही ..... कर सकता है?"

प्रस्तुत नाटक में शंकर का व्यक्तित्व सबसे प्रभल है। वह परंपरा भंजक और परंपरा ग्रस्त भी। प्रतीकात्मक रूप से वह क्रान्तीकारी भी है। वे साक्षात् ब्रह्म है। अपनी प्रिय सति की मृत्यु पर उनका व्यक्ति खंडित एवं विद्रोहा बन जाता है। यहाँ शंकर स्वयं ही अपने रचे हुए वियमों की सवज्ञा करते है। रक्षक ही भक्षक हो जाये।

4. "*इसका है ये अर्थ*
दृष्टि के बिना अकारण युद्ध न ठानें,
युद्ध अधिक-से-अधिक एक कारण है
उसको सत्य न मानें,
प्राणों की आहुति
युद्र के नहीं
सत्य के लिए होती है!"

प्रस्तुत वाक्य दुष्यंतकुमार का 'एक कण्ठ विषपायी' नाटक से लिया गया। चतुर्थ दृश्य में शिव देवलोक पर आक्रमण करते है। युद्ध की समज्याओं का लेकर देवताओं में विवाद हैष इन्द्र आवेश में युद्ध का पक्ष ले है। जिसकी प्रतिक्रिया में वरुण, कुबेर तथा शेष उत्तेजित है उठते है। इस समय ब्रह्मा इन्द्र शेष आदि को कहते है-

"इसका है ये... सत्य केलिए होती है! "

ब्रह्मा शासन छोडने को तय्यार हूँ। बल्कि युद्ध की अनुमति नहीं दे रहे है। क्योंकि दे उसे सामूहिक आत्मघात ही समझते है। उनके मत में प्राणों की साहुति युद्ध के नहीं, सत्य के लिए होती है!

5. "*देवराज!*
तुम अपना धनुष बाण मुझको दो,
मेरे मत में
पहले कर्म हुआ करता है-
फिर उस व्याख्या होती है...."

प्रस्तुत वाक्य दुष्यंतकुमार जी का 'एक कण्ठ विषपायी' नाटक से लिया गया है। नाटक के अंतिम अवसर पर विष्णु का आगमन होता है। उस दयनीय अवस्था के बारे में सब लोग चिन्ता करते है या उसके मन में वह प्रश्न की कोई मार्ग नहीं आते है। उस वक्त विष्णु ने कहा-

"देवराज... व्याख्या होती है..."

बातों के कंत में विष्णु अपने प्रणामबाण शंकर के चरणों पर छोड देते है और बाण के दूस फलक से शंकर के कंधे पर पडें हुए भगवती सती के शव को कण्ठ कर दिशा में चितरा देत्त है। और युद्ध टल जाता है।

6. "*मुझे ज्ञात है*

हर परम्परा के मरने पर थोड़े दिन तक

सारा वातावरण शून्य से भर जाता है,

और परम्परा के चरणों में नतमस्तक

उसका हर पोषक

सहसा मन में डर जाता है।

अथवा आक्रमण या हिंसक हो उठता है।"

यह दुष्यंतकुमार का 'एक कण्ठ विषपायी' से लिया गया। नाटक के अंत में विष्णु अपने कर्म को महत्ता दी है। यह कर्म चिन्तन प्रसूत है धर्मजन्य है। सभी लोग विष्णु की कर्म को महत्ता दी है या प्रशसा देती है। तब विष्णु कहते है- "मुझे... हो उठता है।"

दुष्यंतकुमार ने कथा को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। परिवर्तन नियती का नियम है। पुराने परंपरा पर विश्वास रखकर चलना उचित नहीं है। क्योंकि कुछ दिनों के बाद पुरानी परंपरा नष्ट होकर नये मूल्यों उदय होता। यह बात नाटक में प्रस्तुत किया।

MODEL QUESTIONS

1. क्यों दक्ष ने शंकर को यंज्ञ में नहीं बुलाया?

उ. दक्ष की पुत्री सति, शिव से विवाह होने से दक्ष उद्वेलित है।

2. सति क्यों यज्ञ में जलकर आत्मत्याग कर दिया?

उ. अपने पति शंकर केलिए कोई स्थान न पाकर तथा दक्ष से भर्त्सना भरी बाते सुनकर पति के अपमान से अपमानित सति यज्ञ में जलकर आत्मत्याग कर देती है।

3. दक्ष के पुत्र को क्यों घुसा आया?

उ. सुलभ ने एक नन्हें चिडियाँ को पकडा। लेकिन भृत्य ने उस चिड़िया को मुक्त किया। इससे सुलभ ने गुसा हो गया।

4. "पैसे ही आप भी दुःखी हैं
अपने घर की सोनाचिरैया उड़ जाने पर"
क्यों दीरणी ने दक्ष से इस तरह कहा?

उ. अपने पुत्री शिव से विवाह होने से दक्ष उद्वेलित है। इस वाक्य में सती को सोनाचिरैया की तरह उपमा करते। पुत्री की वियोग से वीरणी इस तरह उपमा करते है।

5. सर्वहत को क्या हुआ?

उ. गर्दन पर चोट लगी है।

6. शासक की भूलों का उत्तरदायुक्त किसको सहना पडता?

उ. प्रजा को

7. शंकर के भूतगणों को क्यों गुस्सा आया?

उ. सति के आत्मत्याग के कारण भूतगणों को गुरसा आया।

8. द्वारपालक द्वारा सती के आत्मदाह की असुभ सूचन पारकर वीरणी को क्या हुआ?

उ. सती के आत्मदाह की अशुभ सूचना पारकर वे जमीन पर बैठ ढुलक जाती है।

9. अपनी प्रिय सति की मृत्यु पर शंकर का व्यक्तित्व कैसे परिवर्तन हुआ?

उ. उनका व्यक्तित्व खंडित एवं विद्रोही बन जाता है। वे संध्या तक शव में चेतनता न भटने पर तीनों लोके में तांडव की घोषणा करते हैं।

10. युद्ध तथा उसके परिणाम के बारे में जनता का प्रतिनिधि पात्र सर्वहत का व्यक्त कैसे है?

उ. वह कहते है- जनता की यहीं नियती है कि युद्ध की राजनीति- आवश्यकता- अनावश्यकता और कारणों से अनपिक्ष उसे ही सब यादनाएँ सहनी पडती है।

11. युद्ध के संबंधि ब्रह्मा के सोच क्या है?

उ. ब्रह्मा शासन छोडने को तैयार हूँ। बल्कि युद्ध की अनुमति नहीं दे रहे है। क्योंकि ते उसे सामूहिक आत्मद्याद ही समझते है।

विस्तृत उत्तर लिखिए-

(1) प्रस्तुत कविता के द्वारा दिनकर किसे बड़ा मानते है कलम दा कि तलवार और क्यों?

(2) कवि के अनुसार कलम की विशेषताएँ क्या-क्या है?

(3) नदी को कवि कामधेनु क्यों माना है?

(4) त्रिलोचन की कविता नदी : कामधेनु का उद्देश्य क्या है?

(5) नदी अब कामधेनु की हैसियत में कैसे पहुँच गयी है?

(6) 'अकाल-दर्शन' कविता का भावार्थ स्पष्ट कीजिए।

(7) 'अकाल दर्शन' कविता का केन्द्रीय कथ्य क्यों- आम आदमी की तटस्थता पर चोट, कहा गया है?

****